भारतीय व्यापार

(Trade in India)

(प्रश्नोत्तर-रूप में)

लेखक—
के० एल० बंसल

प्राक्कथन-लेखक
डा० शिवध्यान सिंह चौहान
एम० कॉम०, पी-एच डी०
भारत सरकार द्वारा पुरस्कार विजेता)
वाणिज्य-विभाग
बलवन्त राजपूत कॉलेज, आगरा।

आगरा
साहित्य-भवन
शिक्षा-सम्बन्धी साहित्य के प्रकाशक

[मूल्य ३)

प्रथम-संस्करण १६६१

प्रकाशक : साहित्य-भवन,
२७३२, हास्पीटल रोड, आगरा ।

मुद्रक : श्याम प्रिंटिंग प्रेस,
राजामण्डी, आगरा ।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक "भारतीय व्यापार एव परिवहन" (प्रश्नोत्तर रूप मे) के पूर्ण अध्ययन के उपरान्त मुझे यह विश्वास हो गया है कि पुस्तक अत्यन्त परिश्रम के साथ लिखी गई है। यह पुस्तक कमजोर एवं अच्छे दोनो प्रकार के विद्यार्थियो के लिये उपयोगी है। यदि एक ओर यह कमजोर विद्यार्थियो के लिये परीक्षा मे सफलता प्राप्त करने का एक सहज साधन है तो दूसरी ओर अच्छे विद्यार्थियो को ऊँचे अक प्राप्त कराने के लिये पथ प्रदर्शक भी है। प्रश्नो का चुनाव इस क्रम से किया गया है कि वे विषय सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान कराने के लिये क्रम बद्ध अध्ययन-सामिग्री उपस्थित करते हैं। लेखक ने पुस्तक में नवीनतम सूचनाओ एव आँकडो का समावेश किया है। उन्होंने आँकडो को अत्यन्त बोधगम्य बना दिया है।

पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल है। कही कही तो पुस्तक मे एक उपन्यास के समान रोचकता की झलक दिखायी देती है। विद्वान लेखक ने इस पुस्तक को लिखकर विद्यार्थी वर्ग का बहुत ही उपकार किया है जिसके लिए वह बधाई का पात्र है।

राम नगर कालौनी,
सिविल लाइन्स,
आगरा

—शिवध्यानसिंह चौहान

भूमिका

यद्यपि प्रस्तुत विषय पर अनेक पाठ्य पुस्तकें हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं मे उपलब्ध हैं, तथापि अनेक विद्यार्थियों को उनसे पूर्ण संतोष अनुभव नहीं होता क्योंकि किसी प्रश्न का उचित उत्तर क्या है एवं प्रश्न के उत्तर से सम्बन्धित विभिन्न अंगों को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाय, इत्यादि समस्याओं को सुलझाने मे वे प्रायः असमर्थ रहते हैं। विद्यार्थियों की इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान मे रखकर ही यह प्रयास किया गया है। सच तो यह है कि विषय का जितना विशद विश्लेषण इस प्रश्नोत्तरी मे किया गया है उतना एक पाठ्य पुस्तक मे होना सम्भव नहीं। प्रश्नोत्तर रूप में एक ही बात को विविध दृष्टिकोणों से पूर्ण गहराई के साथ अध्ययन करने का अवसर मिल सकता है। उच्च कक्षाओं मे प्रायः प्रत्यक्ष प्रश्न कम पूछे जाते हैं। बहुधा प्रश्नों मे किसी पुस्तक, लेखक अथवा वक्ता का उद्धरण देकर विद्यार्थियों मे उसका विवेचन या स्पष्टीकरण करने को कहा जाता है। इन उद्धरणों को कभी-कभी विद्यार्थी ठीक-ठीक समझ ही नहीं पाते, उनका उपयुक्त उत्तर लिखना तो दूर की बात रही। साधारण विद्यार्थी तो ऐसे प्रश्नों को छोड़ देते हैं। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़कर पाठक यह देखेंगे कि अनेक बार प्रश्न का उत्तर एक ही है, किन्तु उसके पूछने का ढंग अथवा उसकी शब्दावली भिन्न है। यह आशा की जाती है कि विद्यार्थियों को प्रस्तुत पुस्तक पढ़ने के उपरान्त विषय का विशद एवं सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान हो सकेगा। मेरा तो अपना यह विश्वास है कि अच्छे नम्बरों से परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिये यह प्रश्नोत्तरी पढ़ना विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य है। इस पुस्तक से उन्हें प्रश्न का उत्तर लिखने का उपयुक्त ढंग और आकार का ज्ञान हो सकेगा। प्रस्तुत पुस्तक उन्हें लाभदायक ही नहीं, वरन् रोचक और ज्ञानवर्धक भी प्रतीत होगी।

पुस्तक की भाषा को सरल, सरस एवं रोचक तथा आंकड़ों को बोधगम्य बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। सभी आंकड़े नवीनतम उपलब्ध आंकड़े हैं। विषय के अध्ययन मे उत्तम पुस्तकों के अतिरिक्त अनेक सरकारी प्रतिवेदनों, पत्र-पत्रिकाओं एवं अधिकृत प्रकाशनों की सहायता ली गई है।

जिस परिश्रम के साथ इस पुस्तक को लिखा गया है यदि उसी परिश्रम के साथ पाठक इसे पढ़ेंगे, तो मैं अपने इस परिश्रम को सफल हुआ समझूँगा।

—लेखक

विषय सूची

भारतीय व्यापार (प्रथम भाग)

प्रशुल्क नीति एवं पद्धति (द्वितीय भाग)

अध्याय १

व्यापार के प्रकार

(Classification of Trade)

Q. 1. Classify trade and explain the difference between home trade and foreign trade.

व्यापार का वर्गीकरण कीजिए तथा गृह व्यापार और विदेशी व्यापार का अन्तर समझाइए।

वस्तु-विनिमय अथवा क्रय-विक्रय की क्रिया को व्यापार कहते हैं। व्यापार दो प्रकार का होता है: (१) देशी व्यापार, गृह व्यापार, राष्ट्रीय व्यापार अथवा आन्तरिक व्यापार, (२) विदेशी व्यापार अथवा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार। किसी देश की सीमा के अन्तर्गत सीमित रहने वाले व्यापार को देशी अथवा गृह व्यापार कहते हैं। गुड, खांड, घी, साड़ियां, धोतियां, भारतीय मोटरें, भारतीय इंजन इत्यादि वस्तुओं का क्रय-विक्रय भारत की सीमा के अन्तर्गत ही सीमित है। अतएव इन वस्तुओं के व्यापार को आन्तरिक व्यापार कहा जाता है। देशी व्यापार तीन प्रकार का होता है: (क) स्थानीय, (ख) प्रान्तीय और (ग) अन्तर्प्रान्तीय। दूध, मक्खन, खोआ, मिठाइयां, ताजे फल, तरकारियां, मिट्टी के बर्तन, चारा (भूसा, कर्वी, घास), दाना, चूना-ईंट, इत्यादि वस्तुओं का व्यापार बहुधा स्थानीय ही होता है, क्योंकि इनका क्रय-विक्रय किसी स्थान विशेष तक ही सीमित होता है। एक प्रान्त का बना हुआ माल उस प्रान्त के विभिन्न क्षेत्रों में आना-जाना हो और उस प्रान्त से बाहर न जाता हो तो ऐसे व्यापार को *प्रान्तीय व्यापार* कहेंगे। आलू, मरवी, पलंग, मेज-कुर्सी, मोटे अन्न इत्यादि वस्तुएँ प्रत्येक प्रान्त अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए स्वयं ही उत्पन्न कर लेता है। एक प्रान्त के माल का क्रय-विक्रय उस प्रान्त की सीमा के बाहर दूसरे प्रान्तों तक में हो तो उस व्यापार को अन्तर्प्रान्तीय व्यापार कहते हैं। गेहूँ, चावल, चीनी, रुई, चाय, कोयला, सीमेंट, नमक, मिट्टी का तेल, चना, दालें, गुड इत्यादि वस्तुओं का व्यापार अन्तर्प्रान्तीय है। ढुलाई के साधनों के अनुसार देशी व्यापार के चार उपवर्ग किए जा सकते हैं: (क) रेल द्वारा, (ख) सड़क द्वारा, (ग) आन्तरिक जल मार्गों (नदियों व नहरों) द्वारा तथा (घ) समुद्रतट द्वारा होने वाला व्यापार। हमारे देश में रेलों और नदियों से होने वाले व्यापार के सम्मिलित आँकड़े प्रकाशित किए जाते हैं। इस व्यापार की मात्रा

लगभग १२८ करोड मन* वार्षिक होती है। कोयला, लोहा, इस्पात, सीमेंट, चावल, खनिज लोहक, नमक, चीनी, मिट्टी का तेल, तिलहन इत्यादि इस व्यापार की मुख्य वस्तुएँ हैं। भारतीय समुद्रतट से ३०० करोड रुपए से अधिक मूल्य के माल का आवागमन होता है, जिसमें कोयला, तिलहन, नमक, चावल, लकडी, सीमेंट इत्यादि मुख्य हैं। भारतीय सडकों पर लाखो मोटरें, बैलगाड़ियाँ और अन्य यान चलते हैं, जो करोडो मन माल ढोते हैं, किन्तु इस व्यापार के अधिकृत आँकडे उपलब्ध नही हैं।

एक देश का माल दूसरे देश मे जाकर बिके तो उस व्यापार को विदेशी अथवा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं। विदेशी व्यापार के तीन उपवर्ग हैं : (क) आयात, (ख) निर्यात, (ग) पुनर्निर्यात। विदेश से आने वाले माल को आयात और विदेश जाने वाले माल को निर्यात कहते हैं। विदेशी माल के विदेश चले जाने को पुनर्निर्यात व्यापार कहते हैं। भारत के विदेशी व्यापार का वार्षिक मूल्य लगभग १,५०० करोड रुपए (सन् १९५९) है, जिसमें लगभग ९०० करोड रुपए का आयात और ६०० करोड रुपए का निर्यात होता है। हमारे पुनर्निर्यात व्यापार का वार्षिक मूल्य लगभग ६ करोड रुपए है। परिवहन के साधनों के अनुसार भी विदेशी व्यापार का वर्गीकरण हो सकता है। जल, थल और वायु मार्गों से माल विदेश आता-जाता है। हमारे विदेशी व्यापार का एक बड़ा भाग जल अर्थात् सामुद्रिक मार्ग से होता है। स्थल मार्ग से केवल कुछ पडौसी देशों (पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, सिक्कम, तिब्बत) के साथ व्यापार होता है, जो मात्रा में बहुत कम है। वायुमार्ग से केवल बहुमूल्य धातुओं और ताजे फलों का व्यापार सीमित मात्रा में होता है।

सामान्यतः देशी और विदेशी व्यापार में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि क्रय-विक्रय की क्रिया दोनों प्रकार के व्यापार में समान होती है। दोनों प्रकार का व्यापार दो पक्षों (क्रेता और विक्रेता) की अपेक्षा करता है। माल का संचय, वितरण, विज्ञापन इत्यादि बातें भी दोनों प्रकार के व्यापार में समान होती हैं। उधार-नकद व्यवहार भी दोनों प्रकार के व्यापार में होते हैं। एक महत्वपूर्ण अन्तर देशी-विदेशी व्यापार के क्षेत्र का है। एक का क्षेत्र सीमित होता है, दूसरे का विस्तृत। दूसरा अन्तर बाजार प्रवेश के ढग में है।

परिस्थितियों की भिन्नता के कारण विदेशी व्यापार में विशेष प्रकार की योग्यता और अनुभव की आवश्यकता है। अतएव देशी-विदेशी व्यापार में निम्नांकित कारणों से अन्तर करना आवश्यक हो जाता है :

(१) लोगों की रुचि, स्वभाव एव रहन-सहन में अन्तर ;

(२) दो देशों की भाषा का अन्तर ;

(३) भिन्न देशों की व्यापारिक प्रथाओं का अन्तर ;

---

* १९५८

(४) आयात-निर्यात कर एवं सीमा-शुल्क सम्बन्धी नियम ;
(५) सिक्का और नाप तोल के पैमानों का अन्तर ;
(६) परिवर्तनशील विनिमय की दर ;
(७) श्रम की गतिशीलता ;
(८) क्रेता-विक्रेता के बीच की दूरी ;
(९) कानून सम्बन्धी विविधता ।

अध्याय २

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त

(Principles of International Trade)

Q. 2. How does international trade arise? Explain and illustrate the theory of comparative costs. (Agra, 1955, 1958, Luck., 1953)

(क) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का जन्म क्यों होता है ? (ख) तुलनात्मक व्यय के सिद्धांत को उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

(क) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण

विभिन्न देशो की विषमता ही विदेशी व्यापार का मुख्य कारण है। यदि विश्व के सभी देशो को प्रकृति के सभी वरदान समान रूप से मिले होते तो सभी देश अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ अपने ही देश मे उत्पन्न कर लिया करते और विदेशी माल की उन्हें कोई आवश्यकता न पडती। समान साधनो से उत्पादन भी सर्वत्र समान हो सकता था। आज ऐसा नही है। आज भिन्न-भिन्न देशो के साधन और परिस्थितियाँ भिन्न हैं और यही भिन्नता विदेशी व्यापार की जननी है। निम्नांकित बातें विदेशी व्यापार के आविर्भाव का कारण कही जा सकती हैं :

(१) भूमि की बनावट मे अन्तर,
(२) जलवायु की विविधता,
(३) जनसख्या का असमान वितरण,
(४) उत्पादन के साधनो की असमानता,
(५) उत्पादन कौशल की असमानता,
(६) विकास-स्तर का अन्तर,
(७) भौगोलिक स्थिति का अन्तर, इत्यादि।

(१) भूमि की बनावट—

भूमि उत्पादन का प्रारम्भिक एवं महत्वपूर्ण साधन है। भूमि की उर्वरता सर्वत्र समान नही। कुछ देशो की भूमि अधिक उर्वर है और वहाँ उच्च कोटि के पदार्थ उत्पन्न हो सकते है। कनाडा, सयुक्तराष्ट्र, रूस, अर्जनटाइना, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड

होती है। अतएव भारत मशीनों और अन्य आधुनिक यंत्रो के लिए पाश्चात्य देशों का मुखापेक्षी है। संयुक्त राष्ट्र, रूस और यूरोप के देशों का आधुनिक ज्ञान हमसे कहीं आगे बढ़ा हुआ है। अतएव ये देश मशीनें, गाड़ियाँ, रसायनिक पदार्थ इत्यादि वस्तुयें अविकसित देशों को देते हैं।

(६) विकास स्तर—

भिन्न-भिन्न देशों के आर्थिक विकास की विषमता भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की जननी है। इंगलैंड, संयुक्त-राष्ट्र, रूस, जर्मनी और जापान इत्यादि देश विश्व के विकसित राष्ट्रों मे गिने जाते हैं तथा एशिया और अफ्रीका के देश अविकसित राष्ट्रो मे। विकसित राष्ट्र अविकसित राष्ट्रो के नेता बने हुए हैं और पिछड़े हुए राष्ट्रों के विकास के लिए बहुत सा माल, मशीने और सहायता प्रदान करते हैं। अनेक अविकसित और अर्द्धविकसित राष्ट्रों का विकसित राष्ट्रों के साथ व्यापार 'विकास सम्बन्धी सामग्री से सम्बन्धित है।

(७) भौगोलिक स्थिति—

विश्व के व्यापारिक मार्गों के केन्द्रवर्ती भाग मे स्थित होने के कारण ब्रिटेन वर्षों तक विश्व का व्यापारिक नेता बना रहा। दक्षिणी-पूर्वी एशिया, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका इत्यादि भूभागो के बीच भारत की स्थिति भी बड़ी महत्वपूर्ण है। हिन्द-महासागर के व्यापार का भारत केन्द्रबिन्दु है और प्रशान्त महासागर के व्यापार का आधार। प्राचीन काल मे शताब्दियो तक समुद्र भारत की व्यापारिक उन्नति मे बाधक रहा, किन्तु अब उसके विदेशी व्यापार का एक बड़ा भाग समुद्र-पार के देशो के साथ ही है। समुद्र का मार्ग खुलने से पूर्व हिमालय पर्वत भारत की व्यापारिक उन्नति में बाधक रहा और उसका व्यापार सीमित रहा। आज भी तिब्बत, नेपाल, अफगानिस्तान एवं मध्य एशिया के देशो के साथ बड़े पैमाने का व्यापार इसी बाधा के कारण सम्भव नही अर्थात भौगोलिक बाधायें हमारे स्थलीय व्यापार को उन्नति मे मुख्य बाधायें हैं। जो देश अनुकूल भौगोलिक वातावरण में स्थित हैं उनके लिए इसके प्रतिकूल स्थिति वाले देशों के साथ व्यापार बढ़ाए रखना सहज सम्भव है।

(ख) तुलनात्मक व्यय का सिद्धान्त

तुलनात्मक व्यय का सिद्धान्त इस सर्वमान्य सिद्धान्त का सूचक है कि विदेशी व्यापार से दोनों पक्षों (आयातक और निर्यातक) को लाभ होता है अर्थात् बड़े और समृद्धशाली राष्ट्र छोटे और अविकसित राष्ट्रों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाए रखने से कुछ खोते नहीं। दो देशो मे श्रम* के पूर्णतः गतिशील न होने के कारण उत्पादन

---

* इस सिद्धान्त के प्रतिपादन करने मे श्रम को ही उत्पादन का मुख्य साधन माना गया है।

व्यय में भिन्नता रहती है। अतः प्रत्येक देश उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन में विशेषता प्राप्त करता है जिनके लिए उसे उपयुक्त साधन प्राप्त हैं। अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ उसे अन्य देशों से मँगाने में लाभ है। एक देश के विभिन्न क्षेत्रों और उद्योगों में जैसे श्रम पूर्णतः गतिशील होता है, यदि दो या अधिक देशों में भी वैसी ही गतिशीलता हो तो उन देशों के बीच व्यापार नहीं होगा, क्योंकि श्रम की माँग और पूर्ति स्वतः ही वस्तुओं के मूल्य को प्रत्येक देश में सतुलित करती रहेगी। ऐसी स्थिति में विदेशी व्यापार तभी होगा जब कि दोनों देशों में से प्रत्येक देश एक वस्तु दूसरे से सस्ती उत्पन्न कर सकता हो। मान लीजिए कि श्रम की २० इकाइयाँ लगा कर क देश एक साईकिल बना सकता है और ऐसी ही श्रम की ४० इकाइयाँ लगाकर एक मोटर। इसके विपरीत, ख देश श्रम की ४० इकाइयों से एक साईकिल बना सकता है और १० इकाइयों से एक मोटर। यदि दोनों देश स्वावलम्बी रहे तो ख को मोटरें और क को साईकिलें अत्यन्त मँहगी मिलेंगी। यदि वे स्वावलम्बन छोड कर विशेषीकरण की क्रिया की शरण लें और विदेशी व्यापार का अस्तित्व मान लें तो दोनों को भारी लाभ होगा। विशेषीकरण के सिद्धान्त को अपना कर क देश अपने सम्पूर्ण साधन साईकिलें बनाने में और ख देश मोटरें बनाने में लगा देगा और अपनी आवश्यकता की दूसरी वस्तु दूसरे देश से मँगा लेगा, जो उसे वहाँ से अपने देश की अपेक्षा सस्ती और अच्छी मिल जाएगी। ऐसा करने से विश्व के धनोत्पादन में वृद्धि होगी, क्योंकि अब साधनों का अच्छा उपयोग होने लगेगा। स्वावलम्बी स्थिति में दो साईकिलें और दो मोटरें (अर्थात् कुल चार इकाइयां) ही बनती थीं, विशेषीकरण की क्रिया को अपनाने (अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अस्तित्व स्वीकार कर लेने पर) के उपरान्त तीन साईकिलें और तीन मोटरें (अर्थात् ६ इकाइयाँ) बनने लगेंगी। कुल उत्पादन में वृद्धि होने से बडे पैमाने के उद्योग स्थापित होते हैं और उपभोक्ता को उच्च कोटि का और सस्ता माल मिलता है, जिससे उसका जीवन-स्तर उच्च होता है। निरपेक्ष (absolute) व्यय के अनुसार यह तुलनात्मक व्यय के सिद्धान्त की व्याख्या है।

सापेक्ष अथवा तुलनात्मक व्यय के अनुसार भी इस सिद्धान्त की व्याख्या की जा सकती है। इंगलैण्ड में १ गज कपडा बनाने के लिए श्रम के १०० घंटे और १ पौंड शराब बनाने के लिए १२० घंटे आवश्यक हैं; पुर्तगाल में १ गज कपडा ६० घंटे के श्रम से और १ पौंड शराब ८० घंटे के श्रम से बन जाती है। इस स्थिति में पुर्तगाल को दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष (absolute) सुविधा प्राप्त है। यदि एक देश के विभिन्न भागों की भाँति इंगलैण्ड और पुर्तगाल के बीच श्रम पूर्णतः गतिशील होता, तो साधारणतः पुर्तगाल में ही कपड़ा बुना जाता और वहीं शराब भी बनती तथा इंगलैण्ड उसका मुखापेक्षी रहता, किन्तु व्यवहार में श्रम की यह स्वतन्त्र गतिशीलता दो देशों के बीच देखने में नहीं आती। तो भी विभिन्न देश श्रम-

विभाजन के सिद्धान्त को अपनाते हैं। यद्यपि पुर्तगाल को दोनो वस्तुओ के उपादन मे निरपेक्ष सुविधा प्राप्त है, किन्तु यह सुविधा कपडे की अपेक्षा शराब मे अधिक है अर्थात् तुलनात्मक दृष्टि से पुर्तगाल में शराब का मूल्य-स्तर कपडे की अपेक्षा कम है। कपडे *का मूल्य शराब की इकाइयो मे पुर्तगाल मे* ९०/८० *इकाई और इंगलैण्ड मे* १००/१२० इकाई है। इसके विपरीत शराब का मूल्य कपडे की इकाइयो मे पुर्तगाल में ८०/९० इकाई और इगलैण्ड मे १२०/१०० इकाई है। एक वस्तु के दोनो देशों के उत्पादन व्यय के अनुपात को दूसरी वस्तु के दोनो देशो के उत्पादन व्यय के अनुपात से तुलना करने से ज्ञात होता है कि पुर्तगाल मे इगलैण्ड की अपेक्षा शराब का उत्पादन कपडे की तुलना मे अधिक लाभदायक है। इसे दूसरे शब्दो में, *इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि इंगलैण्ड में* कपडे की अपेक्षा शराब का उत्पादन अलाभकर है। इस भाँति यद्यपि इंगलैण्ड को कपडे के उत्पादन मे निरपेक्ष (absolute) असुविधा है, किन्तु सापेक्षक अथवा तुलनात्मक दृष्टि से उसे कपडे के उत्पादन मे सुविधा प्राप्त है। इस सापेक्षक महत्व को ध्यान मे रखकर पुर्तगाल शराब बनाने मे और इंगलैण्ड कपडा बनाने मे अपने कुल साधनो का उपयोग करेगा। ऐसा करने मे दोनो देशो को लाभ होगा। इसके विपरीत नीति अपनाने मे दोनो देशो को हानि होगी।

यदि दोनो देश स्वावलम्वी होने का यत्न करें तो इंगलैण्ड मे एक इकाई शराब के बदले मे (१२०/१००) १·२ इकाई कपडा मिलेगा और पुर्तगाल मे (८०/९०) ०·८९ इकाई कपडा। अतएव पुर्तगाल का हित इसी मे है कि वह इंगलैण्ड को शराब भेज कर अपनी आवश्यकता का कपडा वहाँ से मँगाए, क्योंकि इगलैण्ड मे उसे एक इकाई शराब के बदले मे १·२ इकाई कपडा मिल सकेगा, किन्तु अपने यहाँ एक इकाई शराब के बदले केवल ०·८९ इकाई कपडा मिलता है। इस सौदे से पुर्तगाल को ०·३१ इकाई (१·२ – ·८९) *कपडे का लाभ है। इसी भाँति इंगलैण्ड का हित इस बात मे है कि* वह कपडे के उत्पादन मे विशेषता प्राप्त करे और अपनी आवश्यकता की शराब पुर्तगाल से मँगाए, जहाँ उसे एक इकाई कपडे के बदले मे लगभग १·१३ इकाई शराब मिल जाएगी, किन्तु अपने यहाँ केवल ०·८३ इकाई शराब मिलेगी। इस भाँति उसे विदेशी सहयोग द्वारा (१·१३ – ०·८३) ०·३० इकाई की बचत हो जाएगी। अतएव *यह स्पष्ट है कि स्वावलम्बन से दोनो देशो को हानि होती है और सहयोग से लाभ।* इसी सिद्धान्त के द्वारा विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का जन्म होता है, क्योंकि परस्पर सहयोग करने मे सभी देशों को लाभ है।

Q. 3. ***"International trade enables a country to make the maximum use of its resources and to raise its standard of living."*** **Comment upon this statement.** **(Luck. 1956)**

"अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रत्येक देश को इस योग्य बनाता है कि वह अपने उत्पादन के साधनों का अधिकाधिक उपयोग कर सके और अपने जीवन-स्तर को अधिक से अधिक उच्च कर सके।" इस कथन की आलोचना कीजिये।

विदेशी व्यापार से समाज को अनेक लाभ होते हैं। इन लाभों में महत्वपूर्ण वे कहे जा सकते हैं जो किसी देश के आर्थिक उत्थान से सम्बन्धित हैं। विदेशी व्यापार के द्वारा क्रय-विक्रय का क्षेत्र विस्तृत होता है, माल का निर्माण बड़े पैमाने पर करना पड़ता है, विविध प्रकार की रुचि और स्वभाव के देश-विदेश में रहने वाले लोगों की माँग पूर्ति करनी होती है और विविध प्रकार का माल बनाना अथवा उत्पन्न करना पड़ता है। इससे देश के साधनों का समुचित उपयोग करने का अवसर मिलता है। उत्पादन में दिनोंदिन वृद्धि और सुधार एवं विकास होता रहता है, वहाँ के निवासियों को अधिकाधिक मात्रा में उपभोग्य पदार्थ प्राप्त होते हैं, उन्हें अपनी न केवल आर्थिक वरन् सामाजिक और राजनैतिक उन्नति करने का भी अवसर मिलता है। उनका दृष्टिकोण व्यापक होता है, बुद्धि का विकास होता है और सम्कृति और भी सुसंस्कृत होती जाती है, अर्थात् उन्हें अपनी सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति का अवसर मिलता है।

साधनों का उपयोग—

साधनों के उपयोग का सर्वोत्तम उपाय विस्तृत बाजार है। जितना ही विस्तृत बाजार किसी वस्तु के लिये प्राप्त होगा उसका उतना ही अधिक उत्पादन करना आवश्यक होगा और तत्सम्बन्धी प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक साधनों का उतना ही अच्छा और समुचित उपयोग सम्भव हो सकेगा। आज हम जितना कपड़ा बुनते हैं, जूट का माल तैयार करते हैं, चाय का उत्पादन करते हैं उतना सम्भवतः देशी बाजार के लिये कभी न कर पाते। इन उद्योगों के इतने अधिक विस्तृत और विश्व विख्यात होने का एकमात्र कारण इनका विश्वव्यापी विस्तृत बाजार ही है।

हमारे अनेक उद्योग ऐसे हैं जिनका विकास और वैभव मुख्यतः निर्यात व्यापार और विदेशी बाजार पर ही निर्भर है। उदाहरण के लिये, भारत अपनी चाय के उत्पादन का लगभग दो-तिहाई, काली मिर्च के उत्पादन का लगभग ५०% और लाख के उत्पादन का ६०% निर्यात करता है। काजू, जटा की सुतली, खनिज लौहक (Manganese), अभ्रक इत्यादि वस्तुओं के उत्पादन का भी एक बड़ा भाग विदेशी माँग पूर्ति के निमित्त होता है। इन उद्योगों को विदेशी व्यापार उपलब्ध न हो तो इनके विकसित होने का कोई अवसर मिलने की सम्भावना नहीं और देश के अमूल्य साधन अविकसित अवस्था में पड़े रह जाएँ।

कुछ वस्तुओं का निर्यात हमें अपनी आयात सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त भी करना पड़ता है, क्योंकि आयात का मूल्य निर्यात से चुकाना पड़ता है। चीनी, मूँगफली, वनस्पति तेल, तिलहन, कोयला और लोहा-इस्पात इत्यादि वस्तुओं

के निर्यात करने की स्थिति में हम नहीं है, तो भी उन देशों के आग्रह पर जिनसे हमें अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ लेनी होती हैं, इन वस्तुओं को हम उन्हें देते हैं। इस भाँति अप्रत्यक्ष रूप में हमारे इन साधनों का अधिक उपयोग होता है। कई प्रकार की छोटी-छोटी वस्तुएँ निर्यात करके हम विदेशी विनिमय अर्जित करते हैं और इस भाँति अपनी आयात-क्षमता बढ़ाकर उन देशों के साधनों के विकास और समुचित उपयोग का मार्ग प्रशस्त करते है।

किसी बाजार में अनेक देशों की बनी हुई वस्तुएँ बहुधा दिखाई देती हैं। इससे उन देशों के उत्पादकों में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा बढ़ती है। यह प्रतिस्पर्धा माल के गुण-सुधार में सहायक होती है, जिसका कि लाभ उपभोक्ता को मिलता है। यह प्रतिस्पर्द्धा गुण की दृष्टि से विभिन्न निर्माता देशों द्वारा अपने साधनों का अच्छा उपयोग करने की प्रेरणा देती है।

उच्च जीवन-स्तर—

विदेशी व्यापार का जन्म विशेषीकरण अथवा श्रम विभाजन के सिद्धान्त के अपनाने से होता है। इस सिद्धान्त के अपनाने से प्रत्येक देश उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन में अपनी विशेष शक्ति लगाता है जिनके लिये उसे विशेष साधन (प्राकृतिक और अप्राकृतिक) प्राप्त होते है। ऐसा करने से वे वस्तुएँ अच्छी और सस्ती उत्पन्न की जा सकती है। अच्छा और सस्ता उत्पादन बाजार के विस्तार का कारण होता है। बाजार का विस्तार बढ़ने से बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव होता है, जिससे माल और भी सस्ता और अच्छा होता चला जाता है। अच्छा और सस्ता माल होना उपभोक्ता के लिये उच्च जीवन-स्तर का कारण बनता है, क्योंकि वह अपनी सीमित आय से अधिक मात्रा में अपनी उपभोग्य वस्तुएँ जुटा लेता है।

विदेशी व्यापार से वस्तुओं की माग बढ़ती है और बाजार व्यापक होता है। लोगों को अनेक देशों की बनी हुई अनेक प्रकार की वस्तुएँ सस्ते मूल्य पर उपभोग करने के लिये मिलती है। इससे उन्हें अधिक सतोष, सुख और शान्ति मिलती है। उपभोक्ता को अपनी इच्छानुसार वस्तुएँ पसन्द करने का अवसर मिलता है। चाहे हम अपने देश की बनी वस्तुएँ पसन्द करें, चाहे इङ्गलैंड की, सयुक्त राष्ट्र की, जर्मनी की, जापान की अथवा अन्य देश की। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के बिना यह सुविधा कैसे मिल सकती है? अंतर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा हम अपना ही जीवन-स्तर ऊँचा नहीं उठाते वरन् दूसरे देशों को भी यह अवसर देते हैं।

जिन वस्तुओं के उत्पादन की आवश्यक साधनों के अभाव में कोई देश कल्पना भी नहीं कर सकता, विदेशी व्यापार से आज उसे वे वस्तुएं वाछनीय मात्रा में मिलती रहती है। भारत में मोटरें, साईकिलें, रेल के इंजन, हवाई जहाज, बड़ी-बड़ी मशीनें कुछ वर्षों से ही बननी प्रारम्भ हुई हैं, किन्तु भारत अनेक वर्षों से इन

वस्तुओं का उपभोग करता रहा है। विविध प्रकार की बडी-बडी मशीनें, कल-पुर्जे, रसायनिक पदार्थ और औद्योगिक कच्चा माल विदेश से मंगाकर हम देश की औद्योगिक उन्नति करने मे समर्थ हैं। यद्यपि अभी औद्योगिक दृष्टि से भारत अपनी बाल्यावस्था मे है, किन्तु धीरे-धीरे उसका स्थान समुन्नत औद्योगिक राष्ट्रों मे होता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे टीन तनिक भी उत्पन्न नही होती, किन्तु वह उसका उपभोग करता है।

इस विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किसी देश की सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति का साधन है। इससे साधनो का समुचित उपयोग ही नही होता, उसकी उत्पादन-क्षमता भी बढती है। यह देश विशेष के बौद्धिक विकास, सास्कृतिक सुधार और सभ्यता का कारण भी है। सम्पर्क बढने से मनुष्य का दृष्टिकोण अति व्यापक होता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक अद्भुत साधन है। जिन देशो की राजनीति, धर्म और विश्वासो मे भारी अन्तर होता है वे भी व्यापारिक क्षेत्र मे सम्पर्क बनाये रखते हैं। इस भाति यह सहनशीलता, सहृदयता और सतुलित विचारधारा को जन्म देता है। विविध प्रकार के लोगों से सम्पर्क बढने और विभिन्न देशो के रीति-रिवाज, रहन सहन के ढंग एव विचारधारा इत्यादि की जानकारी से मनुष्य का ज्ञान बढता है। वह सकुचित वातावरण से उठकर विश्वव्यापी वातावरण मे भ्रमण करना सीखता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सघ के तत्त्वावधान मे विभिन्न देशो की समस्याओं का समाधान इसका एक जीता-जागता उदाहरण है।

अध्याय ३

देशी व्यापार

(Home Trade)

Q. 4. What importance do you attach to India's internal trade? Give a brief account of this trade. (Agra, 1957)

भारत के आन्तरिक व्यापार का महत्व समझाइए और उसका संक्षिप्त विवरण भी दीजिए।

किसी देश का आन्तरिक व्यापार उसके आकार, विस्तार एवं भौगोलिक स्थिति पर निर्भर है। जो देश जितना ही अधिक बड़ा होता है उसका आतरिक व्यापार भी उतना ही विस्तृत और महत्त्वपूर्ण होता है। ब्रिटेन और जापान जैसे छोटे देशों को अपनी अनेक आवश्यकताओं के लिये विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है अर्थात् उनका विदेशी व्यापार देशी व्यापार की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके विपरीत भारत, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका एव रूस जैसे विस्तृत देशो का आतरिक व्यापार अधिक महत्त्वपूर्ण है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का देशी व्यापार उसके विदेशी व्यापार का दस गुना है। भारत की स्थिति, विस्तार एव आर्थिक परिस्थितियाँ सयुक्त राष्ट्र से मिलती-जुलती हैं। अतएव इसी प्रकार का अनुपात भारत के देशी-विदेशी व्यापार मे भी माना जा सकता है।

भारत अपने विस्तार, भूमि की बनावट, विविध प्रकार की जलवायु, उपज एव खनिज सम्पत्ति के कारण विदेशो का मुखापेक्षी नही है। बड़ी जनसख्या और विस्तार के कारण उसे विस्तृत एव उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ गृह-बाजार उपलब्ध है। अतएव आन्तरिक व्यापार के विकास और आत्म-निर्भरता के लिये उसकी स्थिति अत्यन्त आशाजनक है। इतनी बड़ी जनसख्या भारत के लिये महान् उपभोग्य-क्षमता प्रदान करती है, जिससे देश के भिन्न-भिन्न भागों मे वस्तुओं का बड़ी मात्रा मे आदान-प्रदान होता रहता है। यह वस्तु-विनिमय देश की उपज तक ही सीमित नहीं, वरन् विदेशी माल का वितरण भी बड़े पैमाने पर करना पड़ता है। देश की भौगोलिक स्थिति और सास्कृतिक पृष्ठभूमि दोनो ही विदेशी व्यापार की अपेक्षा देशी व्यापार की उन्नति की प्रेरणा प्रदान करती हैं। हमारी उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर इतने ऊँचे पर्वत हैं जो कुछ दर्रों को छोड़ कर हमारे विदेशी व्यापार के उस दिशा के विस्तार

मे भारी रुकावट उत्पन्न करते हैं। हमें पर्याप्त मात्रा मे समुन्नत बन्दरगाह भी उपलब्ध नहीं। यह स्थिति देशी व्यापार के महत्त्व की ओर संकेत करती है।

प्रकृति ने सुन्दर समतल धरातल देश को प्रदान किया है, जहाँ रेल और सड़क मार्ग बनाना अति सुलभ है। हजारों मील लम्बे आतरिक जलमार्ग देश को प्राप्त हैं। इन सुविधाओं के कारण देश के अन्तर्गत माल की ढुलाई सहज सुलभ है। इन परिस्थितियों मे भारत का आंतरिक व्यापार उसके विदेशी व्यापार की अपेक्षा विशेष महत्त्व का है। राष्ट्रीय योजना समिति ने खुले शब्दों मे इस बात का समर्थन किया है।

यह दुख का विषय है कि इतने महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध मे हमें कोई पूर्ण और अधिकृत आंकडे उपलब्ध नहीं। अंतर युद्धकाल के कुछ आंकडे अवश्य मिलते हैं, किन्तु तब से देश की अर्थ-व्यवस्था और उसके आकार-विस्तार मे भारी परिवर्तन हो गये हैं। उन आकड़ों को आधार मानकर आज हम कोई निर्णय नहीं कर सकते। राष्ट्रीय नियोजन समिति ने द्वितीय युद्ध पूर्व की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर भारत के अन्तरिक व्यापार का १०,००० करोड़ रु० अनुमान लगाया था। देश के विभाजन और आयोजन (Planning) के उपरान्त उक्त अनुमान भी ठीक नहीं उतरता। हाल के वर्षों मे राष्ट्रीय आय के अनुमान लगाये गये हैं। सन् १९५६-५७ के अनुमानों के अनुसार विविध क्षेत्रों मे होने वाली उपज का मूल्य इस भाति लगाया गया है :—

(१) कृषि, पशु-धन, वन-उपज एवं मत्स्य	५,९९० करोड़ रुपए
(२) खनिज, निर्माण और छोटे उद्योग	१,९७० करोड रुपए
कुल जोड़	७,९६० करोड़ रुपए

अतएव राष्ट्रीय नियोजन समिति की गणना के अनुसार देश के आतरिक व्यापार का मूल्य १५,३२० करोड रुपए होता है। देश की कुछ उपज विदेश भी चली जाती है। उसका अनुमानित मूल्य निकाल कर आतरिक व्यापार का वार्षिक मूल्य १५,००० करोड रुपए माना जा सकता है, जो कि हमारे वर्तमान विदेशी व्यापार से ठीक दस गुना बैठता है (सन् १९५८ मे हमारा विदेशी व्यापार १,४४३ करोड़ रु० तथा सन् १९५९ में १,५१० करोड़ रुपए था)।

देश के आन्तरिक व्यापार को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :—

(१) रेलों, नदियों और नहरों मे आने-जाने वाला माल; (२) समुद्रतटीय व्यापार और (३) सड़क मार्ग मे होने वाला व्यापार। रेलों, नदियों और नहरों से प्रति वर्ष लगभग १२८ करोड मन माल और लगभग १६ लाख पशुओं का आवागमन होता है। कोयला, सीमेंट, लोहे-इस्पात का सामान, गेहूँ, चावल, चना, चीनी, मिट्टी

का तेल, नमक, तिलहन, खनिज लोहक (Manganese) और लकड़ी इत्यादि पदार्थ रेलो एवं आतरिक जलमार्गो से आने-जाने वाले माल मे प्रमुख हैं। समुद्रतट के मार्ग से सन् १९५६-५७ मे ३४३ करोड रुपए के मूल्य का व्यापार हुआ, जिसमे मुख्य-मुख्य वस्तुएँ खनिज तेल, रुई, सूत, जूट के बोरे, रबड़, कोयला, चाय इत्यादि हैं। सडक मार्ग से होने वाले व्यापार के कोई आँकडे उपलब्ध नही। तो भी यह ध्यान रखना चाहिए कि देश मे एक करोड बैलगाडियाँ, तीन लाख मोटर ठेले, अनेक लदैनू पशु और अन्य विविध वाहन हैं, जो करोडो मन माल की सड़क मार्ग से प्रति-वर्ष ढुलाई करते हैं। कुछ लोगो का अनुमान है कि भारतीय सड़कें प्रति वर्ष लगभग बारह-तेरह करोड टन माल की ढुलाई के लिए उत्तरदायी हैं।

Q. 5. Express your views about the volume of inland trade of India. (Agra, 1960)

भारत के आंतरिक व्यापार को मात्रा के संबंध में अपने विचार प्रगट कीजिए।

भारतवर्ष एक विस्तृत राष्ट्र है। यहाँ विविध प्रकार की जलवायु, भूमि की बनावट तथा प्राकृतिक साधन है। विविध प्रकार की उपज भी स्वाभाविक है। न केवल कृषि-जन्य पदार्थ, वरन् औद्योगिक उत्पादन, खनिज सम्पत्ति, वन सम्पत्ति इत्यादि भी बडी मात्रा में हमे प्राप्त हैं। ४० करोड की जनसख्या को पाकर भारतवर्ष एक विस्तृत और उत्तरोत्तर बढता हुआ व्यापारिक क्षेत्र भी है। विविध प्रकार की उपज का विभिन्न प्रान्तो और क्षेत्रो मे आदान-प्रदान होना स्वाभाविक है। बम्बई अपनी आवश्यकता का कपडा स्वयं बुन लेता है, किन्तु उसे गेहूँ पंजाब से, चावल बंगाल से, चाय आसाम से, चीनी उत्तर-प्रदेश से और लोहा-कोयला बंगाल व बिहार से लेने पडते हैं। यही बात अन्य राज्यो के सम्बन्ध मे भी लागू होती है। ऐसी स्थिति मे हमारे देश का आन्तरिक व्यापार विदेशी व्यापार से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

यह दुख का विषय है कि हमारे इस व्यापार के अधिकृत आँकडे उपलब्ध नही। अतएव कुछ अनुमानो पर हमे संतोष करना पडता है। श्री वर्जविक (Worswick) का सबसे पहला एक अनुमान हमे मिलता है। उन्होंने कहा था कि एक एकड भूमि की उपज भारत विदेश भेजता है तो ग्यारह एकड की उपज स्थानीय उपभोग के काम आती है। इस भाँति उन्होंने भारत के देशी व्यापार को उसके विदेशी व्यापार से ग्यारह गुना बतलाया था। भारत के अन्तर्देशीय व्यापार (Inland Trade of India) के अनुसार सन् १९२०-२१ मे भारत के आन्तरिक व्यापार का मूल्य १,५०० करोड रुपए और उसके गृह व्यापार और विदेशी व्यापार मे २½ : १ का

अनुपात बतलाया गया था। प्रोफेसर के० टी० शाह ने सन् १६२१-२२ मे भारत के इस व्यापार का मूल्य २,५०० करोड़ रुपया आंका था। श्री जे० एन० सेन गुप्त ने सन् १६२५-२६ के आंकड़े लेकर हमारे इस व्यापार का मूल्य ६,००० करोड रुपया लगाया था। सन् १६३७-३८ मे राष्ट्रीय काग्रस की ओर से राष्ट्रीय नियोजन समिति की नियुक्ति की गई। श्री के० टी० शाह इसके मन्त्री थे। श्री शाह ने समिति को भारत के आन्तरिक व्यापार का एक अनुमान भेजा, जिसमें उन्होंने इस व्यापार का मूल्य ७,००० करोड रुपया लगाया था। इसे घ्यान मे रखकर और अन्य तथ्यो के अनुसार राष्ट्रीय नियोजन समिति ने अपने प्रतिवेदन मे, जो कि सन् १६४७ मे प्रकाशित हुआ, इस व्यापार का मूल्य १०,००० करोड रुपए आका। उन्होंने इस बात को भी स्वीकार किया कि भारतवर्ष की स्थिति और विस्तार सयुक्त राष्ट्र अमेरिका से मिलता-जुलता है, जहाँ का कि देशी व्यापार विदेशी व्यापार से १० गुना है। समिति के विचार मे इसी प्रकार का अनुपात भारत के देशी-विदेशी व्यापार मे माना जा सकता है। अपने आन्तरिक व्यापार को हम मोटे तौर से तीन भागो मे बांट सकते हैं: (१) रेलो और नदियो से होने वाला व्यापार, (२) समुद्र तट से आने जाने वाला माल, (३) सडक मार्ग से होने वाला व्यापार। पहले और दूसरे प्रकार के व्यापार के हमें आंकडे उपलब्ध है। भारत सरकार प्रति वर्ष इन दोनो प्रकार के व्यापार के आंकडे प्रकाशित करती है, किन्तु अभी तक न तो इन आंकडो मे सामंजस्य है और न वे पूर्ण ही कहे जा सकते हैं। रेलो और नदियो से आने-जाने वाले माल की केवल मात्रा के आंकडे प्रकाशित होते हैं। उसके मूल्य का कोई विवरण नही दिया जाता। सन् १६५७-५८ मे लगभग १२८ करोड मन माल का रेलो और नदियो से आवागमन हुआ। यह आंकडे केवल धुआंकशो से आने-जाने वाले माल के हैं। छोटी नावो से होने वाले व्यापार के आंकडे इसमे सम्मिलित नही। वस्तुतः देश मे लाखों की संख्या मे नावें ढुलाई का काम करती हैं। इस सीमा तक रेल और नदी के व्यापार के आंकडे अपूर्ण हैं।

भारतीय समुद्र तट मे सन् १६५६-५७ मे ३४३ करोड रुपये के माल का आवागमन हुआ। सम्भवतः ये आंकडे भी सर्वथा पूर्ण नही कहे जा सकते, क्योंकि देशी नावो के यातायात की इसमे कोई गिनती नही है।

सडक मार्ग से भी अमित मात्रा में ढुलाई का काम होता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि बारह-तेरह करोड़ टन माल प्रति वर्ष सडक यान ले जाते हैं।

आंकड़ो की इस विविधता और अपूर्णता के कारण देश के सारे आन्तरिक व्यापार का कोई अधिकृत विवरण उपस्थित नही किया जा सकता। राष्ट्रीय नियोजन समिति के अनुमान भी अब सही नही माने जा सकते, क्योंकि ये अनुमान देश की द्वितीय युद्ध पूर्व की आर्थिक स्थिति के अनुसार थे। तब से देश की अर्थव्यवस्था, उत्पादन क्षमता और औद्योगिक ढांचे मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये हैं। दो पंच-

वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत देश ने कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पादन कई गुना बढ़ा लिया है। अतएव बिना वर्तमान अनुमानों के हम किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच सकते। हाल के वर्षों में राष्ट्रीय आय सम्बन्धी आँकड़े उपस्थित करते हुए देश की उपज के निम्नांकित अनुमान लगाए गये हैं :—

(१) कृषि, पशुधन, वन एवं मत्स्य	५,६६० करोड़ रुपए
(२) खनिज, निर्माण एवं छोटे उद्योग	१,६७० ,, ,,
कुल योग	७,६६० करोड़ रुपये

देश की उपज का कुछ भाग विदेश चला जाता है, उसे निकालने के उपरान्त और राष्ट्रीय नियोजन समिति द्वारा अपनाये गये सिद्धान्तों के अनुसार हम देश के वर्तमान आन्तरिक व्यापार का १५,००० करोड़ रुपये मूल्य आँक सकते हैं, जो हमारे वर्तमान देशी व्यापार से लगभग १० गुना है। राष्ट्रीय नियोजन समिति ने देश की संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से तुलना करके जो बात कही थी उससे भी इन आँकड़ों की सत्यता का समर्थन होता है। श्री वर्जविक का भी ऐसा ही अनुमान था। अतएव इस अनुमान को ठीक मान लेने में हमें कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

Q. 6. What do you understand by the inter-provincial trade of India ? Give a brief account of this trade under the head volume, value and the commodities which participate therein. (Agra 1959)

भारत के अन्तर्प्रान्तीय व्यापार से आप क्या समझते हैं ? इसकी मात्रा, मूल्य और सम्बन्धित वस्तुओं के नाम बतलाते हुए इस व्यापार का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

भारतवर्ष कई राजनीतिक इकाइयों में बँटा हुआ है, जिन्हें राज्य कहते हैं। सभी राज्य स्वावलम्बी नहीं हैं। भूमि की बनावट, जलवायु एवं अन्य परिस्थितियाँ उनके इस प्रकार स्वावलम्बी होने में बाधक हैं। पंजाब में गेहूँ की प्रचुरता है; मद्रास और बंगाल में चावल अधिक होता है; चीनी के भंडार उत्तर-प्रदेश और बिहार हैं; सूती कपड़ा बहुधा बम्बई राज्य में बनता है; कोयले की खानें बिहार और बंगाल में केन्द्रित हैं; लोहा इस्पात भी देश के कुछ क्षेत्रों में ही सीमित है। ये वस्तुएँ उत्पादन-केन्द्रों एवं कारखानों से देश भर में वितरित होती रहती हैं। इस भाँति इस राज्य के उत्पादन और उसकी निर्मित वस्तुएँ दूसरे राज्य को जाती हैं और दूसरे की तीसरे को इत्यादि। यह आदान-प्रदान का ताँता सदैव लगा रहता है। इसी आवागमन को हम अन्तर्प्रान्तीय व्यापार कहते हैं। संक्षेप में, एक राज्य अथवा प्रान्त के माल का दूसरे प्रान्त में क्रय-विक्रय ही अन्तर्प्रान्तीय व्यापार है।

मात्रा—

भारत के अन्तर्प्रान्तीय व्यापार के पूर्ण आँकडे उपलब्ध नहीं। केवल इसका आंशिक विवरण मिलता है। मुख्यतः तीन ढुलाई के महत्वपूर्ण साधन इसके लिए उत्तरदायी हैं : (१) आन्तरिक जलमार्ग (नदियाँ-नहरें) और रेलें, (२) समुद्र तटीय जहाज और (३) सडकें। इनमे से प्रथम और द्वितीय साधनों द्वारा आने-जाने वाले माल के अधिकृत आँकड़े प्रति वर्ष प्रकाशित होते हैं, किन्तु सड़क मार्ग से आने-जाने वाले माल का कोई अधिकृत विवरण नही मिलता।

रेल और नदियो के द्वारा होने वाले अन्तर्प्रान्तीय व्यापार के अधिकृत आँकड़े प्रति वर्ष भारत सरकार प्रकाशित करती है।* सन् १९५७-५८ में लगभग १२८ करोड मन माल का विभिन्न प्रान्तो के बीच आदान-प्रदान हुआ। इसी भाँति समुद्र तट के मार्ग से प्रति वर्ष लगभग ३४३ करोड रु० के मूल्य के माल का आवागमन होता है। वस्तुओ की विविधता एवं उनके नाप और तोल के पैमाने अलग-अलग होने के कारण इसकी मात्रा के सम्बन्ध मे कोई संकलित आँकडे उपस्थित नही किये जा सकते। केवल कुछ मुख्य वस्तुओं के परिमाण का उल्लेख किया जा सकता है :—

वस्तु	लाख टन
कोयला	९·६३
नमक	४·५०
खाद्यान्न	१·७२
सीमेंट	२·१०
अन्य वस्तुएँ	८·२३
कुल जोड़	२६·१८

यद्यपि सड़क मार्ग से आने-जाने वाले माल व वस्तुओं का कोई अधिकृत विवरण नही मिलता तो भी हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि देश में लगभग एक करोड बैलगाडियाँ, लाखो लदाऊ पशु और ५ लाख से ऊपर मोटर गाड़ियाँ हैं, जो कि सम्भवतः रेल और नदियो से भी अधिक माल की ढुलाई करती हैं। यह अनुमान लगाया जाता है कि लगभग बारह-तेरह करोड़ टन माल भारतीय सड़को से प्रति वर्ष आता-जाता है।

मूल्य—

रेलो और नदियो से आने-जाने वाले माल की केवल मात्रा का विवरण प्रकाशित होता है, मूल्य का नही। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि १२८ करोड

* Accounts Relating to Inland (Rail and River Borne) Trade of India.

मन माल का हजारो करोड़ो मे ही मूल्य होगा । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, समुद्र तटीय व्यापार का वार्षिक मूल्य ३४३ करोड़ रु० है । सड़क-मार्ग के व्यापार के मूल्य का भी कोई अधिकृत विवरण उपलब्ध नही । सन् १६३८ मे राष्ट्रीय नियोजन समिति ने हमारे कुल आन्तरिक व्यापार का मूल्य १० हजार करोड़ रुपए आँका था । इसका एक बड़ा भाग अन्तर्प्रान्तीय व्यापार है । तब से अब तक देश का उत्पादन और वस्तुओ का मूल्य कई गुना अधिक हो गया है । अतएव हमारे इस व्यापार का मूल्य भी उपर्युक्त अनुमान का तीन-चार गुना माना जा सकता है ।

वस्तुएं—

नदी और रेल मार्ग से आने-जाने वाली वस्तुओ मे मुख्य निम्नांकित हैं :

कोयला, लोहा इस्पात, सीमेट, चावल, खनिज-लोहक, नमक, चीनी, मिट्टी का तेल, तिलहन, चना, दालें, गेहूँ, लकडी, गुड ।

समुद्र मार्ग से आने-जाने वाली वस्तुओ मे कोयला, तिलहन, नमक, चावल, लकडी, सीमेट इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं । मसाले, सूती वस्त्र, रुई, नारियल, की जटायें, चाय, मूँगफली का तेल, खाद, बोरे इत्यादि वस्तुएं भी समुद्र तट से आती-जाती हैं ।

सड़क मार्ग से भी बहुधा यही वस्तुएं आती-जाती हैं । आँकड़ों की अनुपस्थिति मे उनके सापेक्षक महत्व के सम्बन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता ।

Q. 7. Which commodities participate in the Rail and River borne trade of India ? Give an account of the volume and value of this trade and also point out the relative importance of the commodities.

भारत में रेलों और नदियों से किन-किन वस्तुओं का व्यापार होता है ? इन वस्तुओं का सापेक्षक महत्व बतलाते हुए इस व्यापार की मात्रा और मूल्य का विवरण दीजिये ।

भारत के प्रान्तीय और अन्तर्प्रान्तीय व्यापार का एक बड़ा भाग रेलो और नदियो से होता है । इस व्यापार की वार्षिक मात्रा सन् १६५७-५८ में १२८ करोड़ मन थी ।* इस व्यापार में भाग लेने वाली मुख्य वस्तुएं निम्नांकित हैं :—

* सन् १६५२-५३ में ७५ करोड़ मन माल का रेलो और नदियों से आवागमन हुआ । तब से इसमे उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गयी है । सन् १६५४-५५ में ६५ करोड मन माल का आवागमन हुआ और सन् १६५६-५७ में १११ करोड़ मन तथा सन् १६५७-५८ में १२८ करोड़ मन ।

वस्तुएं	१९५७-५८		मात्रा (लाख मन)	
	लाख मन	%	१९५६-५७	१९५४-५५
१—कोयला,	६,५८६	५१·५	५,७५३	५,४६६
२—लोहा-इस्पात	६७८	५·३	६६१	४६७
३—सीमेंट	७७८	६·१	६२०	४६५
४—चावल	५२८	४·१	५२६	३५६
५—खनिज लोहक	४६४	३·६	२६४	२७३
६—नमक	३१६	२·५	२६४	२५१
७—चीनी और गुड़	४६५	३·६	३६१	२४३
८—मिट्टी का तेल	२६०	२·३	२७३	२०७
९—तिलहन	२५३	२·०	२५१	१६६
१०—चना व दालें	५३१	४·१	२३६	१६६
११—गेहूँ	५४१	४·२		
१२—लकड़ी	३२६	२·६		

ऊपर के आंकड़े बतलाते हैं कि रेल और नदियों से आने-जाने वाली वस्तुओं में मुख्य वस्तुएं कोयला (५२%), लोहा इस्पात (५·३%), सीमेंट (६%), गेहूँ (४%), चावल (४%), चीनी व गुड़ (३·६%), नमक (२·५%), मिट्टी का तेल (२·३%), खनिज लोहक (३·६%), तिलहन (२·०%), चना व दालें (४·१%) और लकड़ी (२·६%) इत्यादि हैं, जो कि सब मिलाकर इस व्यापार के लगभग ९२% के लिये उत्तरदायी हैं।

इस व्यापार से सम्बन्धित सरकारी आंकड़े लगभग ५० वस्तुओं का उल्लेख करते हैं। उपर्युक्त बारह वस्तुओं के अतिरिक्त इस व्यापार में भाग लेने वाली अन्य उल्लेखनीय वस्तुएं रुई, सूत, खली, वनस्पति तेल, ज्वार, जूट, सूती कपड़ा, सूखे फल, चाय, इत्यादि हैं। इनके अतिरिक्त लगभग १६ लाख पशुओं का भी आवागमन प्रति वर्ष मुख्यतः रेलों से होता है। पशुओं में भेड़-बकरियाँ, गाय-बैल, घोड़े और अन्य पशु सम्मिलित हैं।

रेलों से आने-जाने वाली मुख्य वस्तुओं का सापेक्षक महत्व डिब्बों के प्रयोग से भी जाना जा सकता है। सन् १९५८-५९ में ५५,३०,००० डिब्बे बड़ी रेलों पर और ३,३४,००० मँझली रेलों पर माल भरकर चलते रहे, अर्थात् ८८,३४,००० डिब्बे प्रयोग किये गये।

वस्तु	डिब्बों की संख्या			कुल का प्रतिशत
	बड़े	मॅझले	कुल जोड़	
१—कोयला	१८,२५,०००	५,२५,०००	२३,५०,०००	२६·६
२—खाद्यान्न और दालें	४,४६,०००	४,०४,०००	८,५०,०००	९·६
३—तिलहन	६२,०००	८१,०००	१,४३,०००	१·६
४—रुई	३३,०००	२५,०००	५८,०००	·७
५—सूती माल	१५,०००	६,०००	२१,०००	·२
६—जूट	७४,०००	७२,०००	१,४६,०००	१·७
७—जूट का माल	८,०००	८,०००	१६,०००	·२
८—चीनी	५४,०००	७५,०००	१,२९,०००	१·५
९—गन्ना	४८,०००	१,७९,०००	२,२७,०००	२·६
१०—सीमेंट	१,७६,०००	१,३०,०००	३,०६,०००	३·५
११—लोहा इस्पात	२,४९,०००	५२,०००	३,०१,०००	३·४
१२—चाय	११,०००	२३,०००	३४,०००	·४
१३—खनिज लोहक	४८,०००	१८,०००	६६,०००	·७
१४—कच्चा लोहा	२,३८,०००	५६,०००	२,९४,०००	३·३
१५—अन्य धातुएँ	११,०००	१७,०००	२८,०००	·३
१६—अन्य वस्तुएँ	२२,३२,०००	१६,३५,०००	३८,६७,०००	४३·७
कुल जोड़	५५,३०,०००	३३,०६,०००	८८,३६,०००	१००

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि रेल यातायात की मुख्य वस्तुएँ कोयला (२६·६%), खाद्यान्न और दालें (९·६%), सीमेंट (३·५%), लोहा इस्पात (३·४%), कच्चा लोहा (३·३%), गन्ना (२·६%), जूट (१·७%), तिलहन (१·६%), चीनी (१·५%), खनिज लोहक (·७%), रुई (·७%) इत्यादि हैं।

Q. 8. In what commodities is the coastal trade in India generally carried on? What are the present hindrances in its further development? In what directions can it be further developed? (Agra, 1958)

बहुधा किन वस्तुओं में भारत का समुद्रतटीय व्यापार होता है ? इस व्यापार के विकास में वर्तमान समय में क्या रुकावटें हैं ? किन दिशाओं में इसका विकास हो सकता है ?

भारत का समुद्रतटीय व्यापार उसके आन्तरिक व्यापार का एक अंग है। इसके अन्तर्गत प्रान्तीय और अन्तर्प्रान्तीय व्यापार-व्यवहार सम्मिलित किये जाते हैं। आँकड़ों के संकलन के लिए देश के राज्यो को, जो समुद्रतट पर स्थित हैं, नौ समुद्रतटीय खण्डो मे बाँटा गया है :—

(१) पश्चिमी बंगाल, (२) उड़ीसा, (३) आन्ध्र प्रदेश, (४) मद्रास, (५) केरल, (६) बम्बई, (७) अण्डमान निकोबार, (८) लक्का द्वीप।

उक्त प्रदेशों के अन्तर्गत माल के आवागमन से सम्बन्धित व्यापार को प्रान्तीय व्यापार का एक अंग मानना चाहिए और इन विभिन्न प्रदेशों के अन्तर्गत माल के आदान-प्रदान से सम्बन्धित व्यापार को अन्तर्प्रान्तीय व्यापार का एक अंग।

जनवरी-दिसम्बर सन् १९५८ मे कुल समुद्रतटीय व्यापार का मूल्य ३३८·६६ करोड़ रुपये था, जिसमें से ६९·७९ करोड़ रुपये का प्रान्तीय व्यापार और २६८·८७ करोड़ रुपये का अन्तर्प्रान्तीय व्यापार था। उक्त प्रान्तीय व्यापार में ३८·६८ करोड़ रुपये का आयात और ३१·११ करोड का निर्यात व्यापार था। इसी भाँति अन्तर्प्रान्तीय व्यापार से १३७·४२ करोड़ रुपये का आयात व १३१·४५ करोड़ रुपये का निर्यात व्यापार था।

वस्तुएँ—

समुद्रतटीय व्यापार में भाग लेने वाली मुख्य वस्तुएँ खनिज तेल, सूत और सूती वस्त्र, जूट का माल, मसाले, वनस्पति तेल, रबर, सीमेंट, रुई, कोयला, चाय, चीनी, रासायनिक पदार्थ, लोहा, इस्पात, नारियल, खोपड़ा, तम्बाकू, नमक, जटा की सुतली और वस्तुएँ, साबुन, चावल, खनिज धातुएँ, कागज और टिन इत्यादि हैं। उक्त १३ वस्तुएँ इस समुद्रतटीय व्यापार के ७२% के लिए उत्तरदायी हैं। सन् १९५८ में कुछ महत्वपूर्ण वस्तुओं के व्यापार का वार्षिक मूल्य नीचे की तालिका में दिया गया है :—

वस्तु	मूल्य (करोड़ रुपये)	कुल का प्रतिशत
(१) खनिज तेल	४८·९०	१५
(२) सूत और सूती वस्त्र	३१·६८	९
(३) जूट का माल	२४·९७	७
(४) मसाले	१८·४७	५·५
(५) वनस्पति तेल	१५·९६	५·०
(६) रबर	१३·८३	४·०
(७) सीमेंट	११·३०	३·५
(८) रुई	९·४१	३·०
(९) कोयला	९·१६	३·०
(१०) चाय	८·०९	२·०

बाधायें—

भारत के समुद्रतटीय व्यापार के विकास में अनेक बाधायें हैं। इन बाधाओं के कारण इसका विकास उतना नहीं हुआ जितना सम्भवतः हो सकता था। सन् १९५६-५७ में इस *व्यापार का मूल्य ३४३ करोड़ रुपये था। सन् १९५८ (जनवरी-*दिसम्बर) में वह केवल ३३८ करोड़ रुपये का रह गया। मुख्य बाधाओं का विवरण नीचे दिया गया है :—

(१) **अलाभकर भाड़ा दरें**—गत वर्षों में तटीय जहाजी कम्पनियों के संचालन-व्यय में तेजी से वृद्धि हुई है। किन्तु उसके अनुरूप उन्हें भाड़ा-दरें बढ़ाने की आज्ञा नहीं दी गई। अतएव सेवा संचालन अलाभकर होता गया है और कम्पनियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है।

(२) *रेल-प्रतियोगिता*—*समुद्रतटीय जहाजी व्यवसाय का एक मात्र आधार* कोयला और नमक हैं। इन दोनों वस्तुओं की ढुलाई में रेलों में भारी प्रतियोगिता होती है। रेलों ने इन वस्तुओं के भाड़े ढुलाई व्यय से भी नीचे कर दिये हैं। फल-*स्वरूप इन वस्तुओं का आवागमन समुद्रतट से हटकर रेलों से होने लगा है। इस* बढ़ती हुई प्रतियोगिता के विरुद्ध तटीय पोतचालन ने आवाज उठाई और सन् १९५५ में *रेल-समुद्र-समन्वय समिति* (Rail-Sea Coordination Committee) नियुक्त की गई। इस समिति ने जहाजी कम्पनियों की इस शिकायत को उचित बतलाया और केन्द्रीय सरकार से यह आग्रह किया कि रेलों के भाड़े ढुलाई व्यय के अनुसार रखने से जहाजी कम्पनियों की स्थिति सुधर सकेगी। भारत सरकार ने समिति के इस सुझाव पर अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया है। इस ओर शीघ्र ध्यान देने *की आवश्यकता है।*

(३) **पूंजी और बदलाव** (Capital and Replacement) **सुविधाओं का अभाव**—गत वर्षों में नये और पुराने जहाजों का मूल्य तेजी से बढ़ता गया है। ऐसी स्थिति में उन जहाजों के स्थान पर नये जहाज लेना जिनका कि जीवन काल समाप्त हो चुका है तथा जहाजी बेड़े की शक्ति बढ़ाने के निमित्त जहाज लेना कम्पनियों *के लिए सर्वथा दुर्लभ हो गया है। यह अनुमान लगाया है कि केवल बदलाव के निमित्त* भारतीय कम्पनियों को ३५ से ४० करोड़ रुपये की पूंजी की आवश्यकता है। गत वर्षों में भारत सरकार ने ऋण-व्यवस्था की है। किन्तु यह अपर्याप्त सिद्ध हुई है। इन सुविधाओं को बढ़ाने की आवश्यकता है।

नये जहाज बनने की सुविधायें भी देश में अपर्याप्त हैं। देश में दूसरे जहाज घाट का निर्माण शीघ्र होना चाहिए और *तीसरे, चौथे जहाज घाट बनाने की योज*-*नायें भी हाथ में शीघ्र लेनी चाहिएं।*

(४) **सचालन व्यय में उत्तरोत्तर वृद्धि**—*गत वर्षों* में तटीय पोतचालन का संचालन-व्यय उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है और दिनोंदिन और भी बढ़ता जा रहा है।

यह वृद्धि मजदूरी, लदाई, ईंधन, बन्दरगाह व्यय, मरम्मत, भण्डार इत्यादि सभी मे हुई है और हो रही है। फलतः एक जहाज जिस पर ६० व्यक्ति काम करते हो, जिसका मासिक व्यय सन् १९३९ मे १,६५० रु० होता था, उसका मासिक व्यय अब ८,६०० रु० होता है अर्थात पाँच गुने से अधिक हो गया है। जिस गति से संचालन व्यय मे बढोतरी हुई है उसी गति से भाडे की दरों मे और आय में बढ़ोतरी नही हुई।

(५) **बन्दरगाहों की देरी**—माल चढाने-उतारने मे बन्दरगाहो पर बड़ी देर लगती है, जिससे संचालन व्यय अकारण बढ जाता है। सन् १९३८-३९ मे जहाज के लदने से माल के उतारने तक के समय मे से ५४·६% समय बन्दरगाह पर जहाज को लगता था और शेष ४५·४% मार्ग मे। सन् १९४६-४७ मे बन्दरगाह पर रुकने का समय ६६·५% और सन् १९५६-५७ मे ६९·८% हो गया। यह देरी जहाजों के पूर्ण उपयोग मे बाधक होती है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारतीय तटीय बेडे का कार्य-कौशल इस देरी के कारण गत वर्षों मे २०% घट गया है। इस देरी का प्रभाव जहाजी भाडो के ऊपर पड़ता है; उनमे १० से २०% की अनावश्यक वृद्धि करनी पडती है। बन्दरगाह पर जहाजो को कम से कम समय रुकने देना चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि बन्दरगाहो पर स्थान सुविधायें बढाई जाये और जमघट कम किया जाए।

(६) **अपर्याप्त जहाजी बेड़ा**—यद्यपि भारत का तटीय व्यापार देशी जहाजो के निमित्त रक्षित कर दिया गया है, किन्तु अभी हमारा जहाजी बेडा हमारी आवश्यकता पूर्ति के लिए अपर्याप्त है। नए जहाज देश मे और विदेश मे बनवाकर एव पुराने जहाज मोल लेकर इस कमी को पूरा किये जाने की शीघ्र आवश्यकता है।

Q. 9. Give a critical account of the coastal trade of India.
(Agra, 1954)

भारत के समुद्रतटीय व्यापार का आलोचनात्मक विवरण दीजिए।

भारत के समुद्रतटीय व्यापार का विवरण प्रश्न ८ मे दिया गया है। हमारे समुद्रतटीय व्यापार की उन्नति मे अनेक बाधाएँ हैं, जिनके कारण उसका उतना विकास नही हो रहा जितना कि होना चाहिए। इन बाधाओ का विवरण एवं उनके निवारण के सुझाव भी प्रश्न ८ मे दिये जा चुके हैं।

Q. 10. What are the difficulties in the development of inland trade of India and what suggestions have you to offer for removing them?
(Agra, 1959)

भारत के आन्तरिक व्यापार के विकास में क्या कठिनाइयाँ हैं ? उन्हें दूर करने के आप क्या सुझाव देते हैं ?

यह बात सर्वमान्य है कि भारत का आन्तरिक व्यापार विदेशी व्यापार की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। यह भी निर्विवाद है कि भारत का देशी व्यापार विदेशी व्यापार से लगभग १० गुना है। दुख का विषय है कि ऐसे महत्वपूर्ण विषय की हमने सर्वथा उपेक्षा की है। हमारी विदेशी सरकार ने निजी स्वार्थ का ध्यान रखकर विदेशी व्यापार की उन्नति और विकास के लिये भरसक प्रयत्न किये। सन् १८६४ से पूर्ण और अधिकृत आंकडे इस व्यापार के प्रकाशित किये जाते रहे, किन्तु कोई भी यत्न देशी व्यापार के आंकडे प्रकाशित करने और उसकी उन्नति एवं विकास के निमित्त नहीं किये गये। हमारे विदेशी शासकों ने रेलों का निर्माण और उनके भाड़ा सम्बन्धी नीति, औद्योगिक नीति एवं व्यापारिक प्रथाएं इस प्रकार की अपनायीं जो देशी व्यापार की उपेक्षा करके विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देती थीं। अतएव हमारा आन्तरिक व्यापार पिछड़ी अवस्था में रह गया। प्रथम युद्ध से पूर्व अग्रगामी अन्य देशों में भी आन्तरिक व्यापार की सामान्यतः उपेक्षा रही, किन्तु तदुपरान्त उसकी उन्नति और विकास के लिये पूरे-पूरे यत्न किये गये। हमारे देश में इस समय भी कुछ नहीं किया गया। विदेशी शासकों से इस सम्बन्ध में विशेष आशा भी नहीं की जा सकती थी। दुख इस बात का है कि स्वतन्त्रता के उपरान्त भी हमने इस ओर कोई सक्रिय प्रयत्न नहीं किए। विदेशी सरकार ने जिस स्थिति में इस व्यापार को छोड़ा था उसी स्थिति में यह अब भी है। अभी तक हमें इस व्यापार के पूर्ण आंकडे तक उपलब्ध नहीं। रेलों और नदियों से आने-जाने वाले माल के आंकडे प्रति वर्ष अवश्य प्रकाशित होते हैं, किन्तु वे पूर्ण नहीं कहे जा सकते। क्योंकि नदियों के व्यापार में केवल धुआँकशों द्वारा ले जाये जाने वाले माल के आंकडे सम्मिलित होते हैं, नावों द्वारा ले जाये जाने वाले माल के नहीं। दूसरे सड़क मार्ग से आने-जाने वाले माल के कोई आंकडे प्रकाशित नहीं होते। योजना काल में भारत सरकार और योजना आयोग ने भारत के विदेशी व्यापार के नियन्त्रण, नियमन और संतुलन का पूर्ण प्रयत्न किया है, किन्तु हमारी दोनों योजनाओं में आन्तरिक व्यापार के विकास के लिए कोई यत्न नहीं किया गया। यहाँ तक कि इसका इन योजनाओं में कोई उल्लेख तक नहीं मिलता। इस भांति हमारा आन्तरिक व्यापार अब भी पूर्ववत ही पिछड़ा हुआ है। इसके पिछड़ेपन के अनेक कारण हैं। मुख्य कारण निम्नांकित हैं:—

(१) परिवहन कठिनाइयाँ, (२) अन्तर्प्रान्तीय कर और बाधायें, (३) तौल और नाप के पैमानों की विषमता, (४) श्रेणीबद्धता और प्रतिमानीकरण का

गये हैं। तो भी प्रान्तीयता की भावना अभी बनी हुई है। इसका पूर्ण निराकरण करने मे कुछ समय लग जायेगा। हमारी वर्तमान सरकार ने राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने के विचार से राज्यों के पाच गुट बना दिए हैं, जो कि पाच भौगोलिक क्षेत्र अथवा विकास समूह कहे जा सकते हैं। प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक क्षेत्र परिषद् (Zonal council) बनायी गई है। ये परिषदें सदस्य राज्यो के पारस्परिक हित की बातो पर विचार करके केन्द्रीय और राज्य की सरकारों को मूल्यवान परामर्श देती हैं। विभिन्न राज्यो के बीच परिवहन और व्यापार सम्बन्धी कठिनाइयो और बाधाओ को हटाना तथा आर्थिक और सामाजिक आयोजना सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार करना इनका मुख्य उद्योग है।

(३) तौल और नाप के पैमानों की विषमता—

हमारे देश मे नाप तौल की जितनी विविधता पाई जाती है उतनी कदाचित ही अन्यत्र हो। दो राज्यो की कौन कहे, कही कही तो एक ही जिले मे कई प्रकार के नाप-तौल के पैमानो का प्रयोग होता है। कही कही बांट के नाम पर कंकड़, पत्थर और ईंटो तक का प्रयोग होता है।

देश मे की गई एक खोज से ज्ञात हुआ है कि खोज के लिये चुने गये १,१०० गांवो मे १४३ प्रकार की बांट प्रणाली का चलन पाया गया है। आयतन और क्षेत्र की लम्बाई की नापो की स्थिति और भी खराब थी। अनुमान है कि १५० से भी अधिक प्रकार के बांट और इतने ही पैमाने देश मे चल रहे हैं। बहुत से स्थानो पर बांटो के नाम तो एक से थे पर उनकी तौल भिन्न भिन्न थी। १०० प्रकार के मन पाये गये, जिनकी तौल २८० तोले से ८,३०० तोले तक थी, जबकि इसका प्रतिमानित वजन ३,२०० तोले है। ८ तोले से १६० तोले तक के सेर १ तोले से ८ तोले तक की छटांकें और १,६०० तोले से ३२,००० तोले तक के खण्डी बांट पाये गये। भिन्न-भिन्न स्थानो मे एक ही इकाई के नाम भी भिन्न-भिन्न थे। ऐसी स्थितियो मे किसी व्यापारी को किसी स्थान पर क्रय-विक्रय करने मे क्या लाभ-हानि होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन है। अतएव आन्तरिक व्यापार मे भारी बाधा पड़ती है।

हाल मे दशमिक प्रणाली को लागू किया गया है। इसके पूर्णतः लागू होने पर उक्त कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी और देश के बढते हुए विचार तथा औद्योगिक ढांचे को बल मिलेगा।

(४) श्रेणीबद्धता और प्रतिमानीकरण का अभाव—

देश मे उत्पन्न होने वाली और बनने वाली वस्तुओ की व्यवस्थित बिक्री के लिये उनकी उत्कृष्टता पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। इसके लिये सरकार समय-समय पर कदम उठाती रही है। कृषि, उपज (वर्गीकरण एवं बिक्री) कानून सन्

१६३७ के अन्तर्गत भारत सरकार विभिन्न वस्तुओं के वर्गीकरण के लिये मानदण्ड निर्धारित कर सकती है और वर्गीकरण करने की व्यवस्था करने की आज्ञा दे सकती है। कृषिजन्य तथा खाने के काम आने वाली वस्तुओं का इसी अधिकार के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जा सकता है और उन पर 'एगमार्क' चिन्ह लगाया जाता है, जिससे उपभोक्ता को विश्वास हो जाता है कि यह पदार्थ शुद्ध और उच्च कोटि के हैं। इस समय केवल घी, वनस्पति तेल, क्रीम, मक्खन, अंडे, चावल, आटा, रुई, गुड़, फल, चीनी, आलू इत्यादि वस्तुओं का 'एगमार्क' के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जाता है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सिफारिश की गई है कि तम्बाकू, सन, उडनशील तेल, ऊन तथा सूअर के बाल, काली मिर्च, अदरख, इलायची, हाथ से चुनी हुई मूंगफली, चमड़ा और खालें इत्यादि का अनिवार्य रूप से वर्गीकरण और गुण-नियंत्रण किया जाय। विभिन्न राज्य सरकारों ने भी गुण-नियंत्रण विभाग खोले हैं, जो प्रतिमानों के अनुरूप बने सभी प्रकार के माल पर उल्लेखना का चिन्ह लगाते हैं। सन् १६४७ में भारतीय प्रतिमान संस्था (I.S.I.) स्थापित की गई थी, जिसने अब तक १,००० से अधिक प्रतिमान प्रकाशित किये हैं। देश में कृषि पदार्थों की बिक्री के लिये १,८०० बाजार हैं, जिनमें से ५२० नियमित हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ५०० और बाजारों को नियंत्रित किया जायगा।

(५) वित्त सम्बन्धी कठिनाइयाँ और वित्त संस्थाओं का अभाव—

भारत में सभी क्षेत्रों में धन का अभाव है, किन्तु यह कमी आन्तरिक व्यापारिक क्षेत्र में सम्भवत: सबसे अधिक है। हमारे आन्तरिक व्यापार की वित्त व्यवस्था अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं के हाथ में है, जिनका परस्पर कोई समन्वय नहीं। नियमन और संगठन के अभाव में इनके द्वारा किया जाने वाला माल का वित्त पोषण अत्यन्त दोषपूर्ण है। इस क्षेत्र में काम करने वाली मुख्य संस्थाएं ग्रामीण, बनियाँ अथवा महाजन, थोक व्यापारी अथवा आढ़तिया, सर्राफ, बैंकें तथा सहकारी समितियाँ हैं। इस वित्त पोषण की मुख्य कड़ी ग्रामीण बनियाँ अथवा महाजन हैं, जो कि अपने एकाधिकार का अनुचित लाभ उठाकर किसानों की उपज का एक बड़ा भाग खा जाता है। ब्याज की दर अत्यन्त ऊँची और अनुचित होती है। एक बार उनके पंजे में फंसकर निकलना दुश्वार होता है। आन्तरिक व्यापार के वित्त पोषण में आधुनिक संस्थाएँ (बैंक, सहकारी समितियाँ) अधिक योग नहीं देती।

(६) गोदामों की कमी—

गोदामों की कमी के कारण भारतीय उत्पादक अपने माल को सुरक्षित रखने एवं उसका उचित मूल्य प्राप्त करने में असमर्थ हैं। केन्द्रीय गोदाम निगम के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों में नौ गोदाम खोले गये हैं। उनके नाम ये हैं: वारंगल (आन्ध्र), अमरावती, गोंदिया और सांगली (बम्बई), बंबगिरि और गदा (मैसूर), बड़गढ़ (उड़ीसा), मोगा (पंजाब) और चंदौसी (उत्तर-प्रदेश)। बम्बई, मैसूर, मद्रास, बिहार,

प० बंगाल, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, पंजाब, उडीसा, मध्य-प्रदेश और आन्ध्र इत्यादि ग्यारह राज्यो मे भी गोदाम निगम स्थापित किये गए है। भारत सरकार ने एक स्थायी सलाहकार समिति भी नियुक्त की है, जिसका नाम खाद्य-भण्डार सलाहकार समिति है। यह समिति सरकारी तथा व्यक्तिगत व्यापारियो के गोदामो मे खाद्यान्न सुरक्षित रखने की समस्या पर विचार करती है।

(७) सरकारी उपेक्षा—

सबसे बडी बाधा सरकारी उपेक्षा है। योजना काल मे भी देश के आन्तरिक व्यापार की उन्नति के लिये भारत सरकार ने कोई कदम नही उठाया। यहाँ तक कि प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओ मे इसका उल्लेख तक नही मिलता है। इसी उपेक्षा के कारण हमारे इस व्यापार के पूर्ण और अधिकृत आकडे उपलब्ध नही। जो कुछ आकडे उपलब्ध हैं वे अपूर्ण है। आकडो के अभाव मे किसी विषय के विकास और विस्तार की कोई सफल योजना नही बनायी जा सकती। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि बैलगाड़ियो, लदंनू पशुओ और नावो से आने-जाने वाले माल के आँकड़े सकलित करके इस व्यापार की वस्तु-स्थिति का ठीक ज्ञान प्राप्त कर नियोजित कार्यक्रम उपस्थित किया जाय।

———

अध्याय ४

विदेशी व्यापार

(Foreign Trade)

Q. 11. The classification of commodities participating in India's foreign trade was changed from January 1957, the new classification being based on International Classification. What is this new classification? Name these classes and sub-classes and explain them.

जनवरी सन् १९५७ से भारत के विदेशी व्यापार में भाग लेने वाली वस्तुओं का वर्गीकरण नवीन ढंग से किया गया है, जो अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण पर आधारित है। यह नवीन वर्गीकरण क्या है? वर्ग-उपवर्गों के नाम बतलाते हुए स्पष्ट समझाइये।

जनवरी सन् १९५७ से पहले व्यापार सम्बन्धी वस्तु वर्गीकरण में केवल १,७१७ वस्तुओं का समावेश था, जिनमें से १,०४७ वस्तुएँ आयात, ४६० निर्यात और २१० पुनः निर्यात की थी। इन वस्तुओं को ५ वर्गों में विभाजित किया जाता था, जिनमें से ३ मुख्य थे :—(१) खाद्य, पेय, एवं तम्बाकू; (२) कच्चे पदार्थ; (३) निर्मित वस्तुएँ। इस वस्तु-वर्गीकरण के स्थान पर अब भारतीय व्यापार वर्गीकरण (Indian Trade Classification) अपना लिया गया है, जो अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण पर आधारित है। परिवर्तित वर्गीकरण में ४,८५० वस्तुओं का समावेश किया गया है। इस नवीन वर्गीकरण के अनुसार आयात-निर्यात पदार्थों को निम्न दस वर्गों मे बाँटा गया है :—

वर्ग संख्या	वर्ग का नाम
०	खाद्य
१	पेय एवं तम्बाकू
२	कच्चे पदार्थ, अखाद्य (ईंधन छोड़कर)
३	खनिज ईंधन, उपस्नेहन एवं तत्सम्बन्धी पदार्थ
४	पशु एवं वनस्पति तेल एवं वसा
५	रसायनिक पदार्थ

वर्ग संख्या	वर्ग का नाम
६	निर्मित पदार्थ
७	मशीनें एवं परिवहन उपकरण
८	विविध निर्मित पदार्थ
९	विविध व्यवहार एवं वस्तुएँ

उपर्युक्त प्रत्येक वर्ग को १० उपवर्गों और उपवर्गों को और भी छोटे वर्गों में बांटा गया है। उदाहरणार्थ, खाद्य वर्ग के १० उपवर्ग इस प्रकार हैं :—

०० जीवित पशु, मुख्यतः खाद्य
०१ मांस और उससे बने हुए पदार्थ
०२ दुग्ध पदार्थ, अंडे और शहद
०३ मछलियाँ और मछलियों से बने पदार्थ
०४ अन्न और अन्न से बनी वस्तुएँ
०५ फल और तरकारियाँ
०६ चीनी और चीनी की बनी वस्तुएँ
०७ चाय, काफी, कोको, मसाले इत्यादि
०८ दाना (पशुओं के निमित)
०९ विविध खाद्य पदार्थ

Q. 12. From which publications can we collect complete statistical figures of our inland and foreign trade ?

यदि हमें अपने देशी और विदेशी व्यापार सम्बन्धी पूर्ण आंकड़े संकलित करने हों तो किन प्रकाशनों से प्राप्त कर सकते हैं।

यद्यपि भारत के देशी व्यापार के पूर्ण आंकड़े प्रकाशित नहीं होते तो भी निम्नांकित पत्रिकाओं से उसका आंशिक विवरण मिलता है :—

(१) आन्तरिक (रेल और नदी द्वारा) व्यापार सम्बन्धी आंकड़े (Accounts Relating to Inland (Rail & River Borne) Trade of India)—

यह एक मासिक पत्रिका है, जिसमें कि आन्तरिक व्यापार मे भाग लेने वाली रेल और नदी के मार्ग से आने-जाने वाली लगभग ५० वस्तुओं के देश के एक भाग से दूसरे भाग को आने-जाने का विवरण प्रकाशित होता है। इसमें इन वस्तुओं की

मात्रा मनों में दी जाती है। वर्षान्त की पत्रिका मे १२ महीने के आंकड़े प्रकाशित होते हैं।

(२) भारत के समुद्रतटीय व्यापार के आंकड़े (Statistics of the Coasting Trade of India)—

यह एक त्रैमासिक पत्रिका है, जिसमें कि समुद्रतट से आने-जाने वाले माल से सम्बन्धित आकड़े प्रकाशित होते हैं। देश को ६ सामुद्रिक क्षेत्रों में बांटा गया है :—

(१) पश्चिमी बंगाल, (२) उड़ीसा, (३) आन्ध्र प्रदेश, (४) मद्रास, (५) केरल, (६) मैसूर, (७) बम्बई, (८) अण्डमान और निकोबार द्वीप, (६) लका द्वीप, मिनीकोय और अमिन्दिवी द्वीप। इस पत्रिका मे वस्तुओ की मात्रा और मूल्य दोनो का विवरण दिया जाता है।

हमारे विदेशी व्यापार से सम्बन्धित आंकड़ो की पूर्ण जानकारी निम्नांकित पत्रिकाओ से प्राप्त की जा सकती है :—

(१) भारत के विदेशी व्यापार के मासिक आंकड़े (Monthly Statistics of the Foriegn Trade of India)—

यह मासिक पत्रिका है। इसमे भारत के जल, थल, और वायु मार्गों से होने वाले विदेशी व्यापार की मात्रा और मूल्य के आंकड़े प्रकाशित होते हैं। आयात, निर्यात और पुनः निर्यात का पूर्ण विवरण इस पत्रिका से मिल सकता है। इन आंकड़ों के संकलन के लिये देश को आठ सीमाशुल्क क्षेत्रों (Customs Zones) मे बांटा गया है :—(१) कलकत्ता, (२) मद्रास, (३) कोचीन, (४) बम्बई, (५) बड़ौदा, (६) दिल्ली, (७) पटना, (८) शिलाग।

(२) भारतीय व्यापार पत्रिका (Indian Trade Journal)—

यह भी एक मासिक पत्रिका है। उपर्युक्त पत्रिका (१) मे तिब्बत, नेपाल, भूटान एवं सिकम के साथ स्थल मार्ग से होने वाले व्यापार सम्बन्धी आंकड़े सम्मिलित नहीं किये जाते। इन देशो के साथ होने वाले व्यापार की मात्रा का विवरण इस पत्रिका मे प्रति मास प्रकाशित होता है।

Q. 13. What is entrepot trade and how is it important for India?

पुनः निर्यात व्यापार क्या है? इसका भारत के लिये क्या महत्त्व है?

विदेश भेजने के निमित विदेश से आये माल अथवा निर्यात के लिये आयात किये गये माल से सम्बन्धित व्यापार को पुनः निर्यात व्यापार कहते है। पुनः निर्यात

व्यापार शुद्ध निर्यात व्यापार से केवल इस बात मे भिन्न है कि शुद्ध निर्यात उस माल का कहा जायेगा जो कि देश मे उत्पन्न हुआ अथवा बनाया गया है, किन्तु पुनः निर्यात व्यापार के अन्तर्गत केवल विदेशी माल सम्मिलित किया जाता है, देशी नही। विदेशी माल देश मे आने पर आयात मे सम्मिलित कर लिया जाता है और उसे बाहर भेजते समय पुनः निर्यात व्यापार कहा जाता है, जो कि वस्तुतः निर्यात का ही एक अंग होता है।

इस व्यापार के दो भाग किये जा सकते हैं :—(१) प्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार (Re-export or Direct Transit Trade), (२) अप्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार (Indirect re-export or Transit Trade)।

प्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार में माल विदेश से सीधा विदेश चला जाता है। उसे आयात मे सम्मिलित नही किया जाता। उसे देश मे उतारने, खोलने और गोदामों मे रखने की आवश्यकता नहीं पडती। निर्यातकर्त्ता अपने देश मे बैठा हुआ विदेशी आयातकर्त्ता के साथ सौदा और शर्तें तय करता है। इसके विपरीत अप्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार मे वह माल सम्मिलित किया जाता है जो विदेश से आकर देश मे उतरता है; गोदामो मे रखा जाता है, आयात मे सम्मिलित किया जाता है और कालान्तर मे विदेश भेज दिया जाता है। ऐसे व्यापार का सौदा मध्यस्थ देश तय करता है और इसके बदले मे उसे पारिश्रमिक मिलता है।

इस व्यापार का निम्न परिस्थितियो मे जन्म होता है :—

(१) जिन देशो का अपना समुद्रतट नही होता उन्हे अपने किसी ऐसे पड़ौसी देश की सहायता से विदेशी व्यापार करना पडता है जिसका समुद्रतट होता है। तिब्बत, नैपाल, भूटान और सिकम भारत के ऐसे ही पडौसी हैं जिन्हे ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जर्मनी, बेलजियम, नीदरलैण्ड, चीन, सिंगापुर, जापान, मिस्र, हांगकांग, अदन, स्विटजरलैण्ड, फ्रान्स, रूस तथा अन्य देशो के साथ व्यापार करना पडता है। यह व्यापार लगभग सबका सब समुद्र के मार्ग से होता है और भारत के बन्दरगाहों द्वारा ही इसका आयात-निर्यात सम्भव है। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नही। सन् १९५७ मे लगभग १२८ लाख रुपये का व्यापार इन देशो के बीच भारत से होकर हुआ।

(२) जितनी अधिक लम्बी सामुद्रिक यात्रा होती है उतने ही बडे जहाज उसके लिये उपयुक्त समझे जाते हैं, जो बडे बन्दरगाहो पर ही रुक सकते हैं। जिन पडौसी देशों के अपने बडे बन्दरगाह नही होते उन्हे दूरवर्ती देशो से किसी पड़ौसी देश के बन्दरगाहो द्वारा माल आयात अथवा निर्यात करना पडता है। भारत के लिये पूर्वी पाकिस्तान की स्थिति लगभग इसी प्रकार की है। पाश्चात्य देशो से पाकिस्तान पहुँचने वाला कुछ माल भारतीय बन्दरगाहो (विशेषतः कलकत्ता) पर आकर उतरता

है और वहाँ से फिर पाकिस्तान चला जाता है। पाकिस्तान से पाश्चात्य देशों को जाने वाला कुछ माल भी कलकत्ते से होकर जाता है।

(३) पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच भारत एक कड़ी का काम करता है। पूर्वी पाकिस्तान से पश्चिमी पाकिस्तान अथवा पश्चिमी से पूर्वी पाकिस्तान भी माल का आवागमन भारत में होकर होता है। इस सुविधा के लिये भारत को उचित पारिश्रमिक मिलता है।

(४) जैसे कोई क्रेता अपनी आवश्यकता का माल सदैव उत्पादन अथवा निर्माण केन्द्र में ही नहीं मोल लेता, वरन् निकटवर्ती दुकानदार अथवा नगर से ही लेता है। ठीक इसी भाँति भारत के पड़ोसी देश भारत से विदेशी माल बहुधा खरीदते हैं। चीन, जापान, इटली व स्विटजरलैंड से आया हुआ कृत्रिम रेशम का माल भारत से अदन, उमान, सिंगापुर, मलाया, अफ़गानिस्तान, वियतनाम इत्यादि मोल लेते हैं। जापान एवं हांगकांग से भारत आये हुए छाते अफ्रीका (जंजीबार, कीनिया, टांगानीका, नियासालैंड) अदन एवं फिजी जाते हैं। यह सभी व्यापार भारत का पुनः निर्यात व्यापार कहलाता है।

यह व्यापार भारत के लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। अति प्राचीन काल से भारत इसके लिये प्रसिद्ध रहा है। दक्षिणी पूर्वी एशिया तथा पूर्वी गोलार्द्ध में अपनी केन्द्रवर्ती स्थिति तथा सुदूरपूर्व और पश्चिम के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाले व्यापारिक मार्ग पर होने के कारण भारतवर्ष इस व्यापार की उन्नति के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति में है। मध्य एशिया और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के पिछड़े देश भारत के लिये उत्तम पृष्ठ देश बनाते हैं और भारत इन देशों का भली-भाँति नेतृत्व कर सकता है। इस व्यापार में उचित पारिश्रमिक भी मिलता है और कुछ सीमा तक हमारी विदेशी विनिमय की समस्या हल होती है। जिन देशों के बीच में इस व्यापार से सम्बन्धित मध्यस्थता का हम काम करते हैं उनके साथ हमारा मैत्री भाव बढ़ता है और सहयोग की भावना जाग्रत होती है। कोलम्बो योजना सम्भवतः इन्हीं सम्बन्धों का परिणाम है।

Q. 14. Give an account of India's entrepot trade. What are the future prospects of its development ? (Luck., 1953)

भारत के वर्तमान पुनर्निर्यात व्यापार का वर्णन कीजिये। इसके भविष्य में उन्नति की क्या सम्भावना है ?

भारत के पुनर्निर्यात व्यापार के दो भाग किये जाते हैं : (क) शुद्ध पुनर्निर्यात (Re-export) व्यापार एवं मार्गवर्ती अथवा संक्रमण (Transit) व्यापार। सन्

१९५८ मे शुद्ध पुनर्निर्यात का मूल्य ८·४० करोड़ रुपये और संक्रमण व्यापार का मूल्य २·११ करोड रुपये था अर्थात् हमारा कुल पुनर्निर्यात व्यापार १०·५१ करोड़ रुपये था।

शुद्ध पुनर्निर्यात व्यापार मे सम्मिलित मुख्य-मुख्य वस्तुएँ निम्नांकित हैं :—

वस्तु	करोड़ रुपये
१—वस्त्र एवं सूत	२·१२
२—परिवहन उपकरण	१·७१
३—धातु पदार्थ	०·४१
४—बहुमूल्य धातुएँ (चाँदी, प्लाटीनम)	०·१६
५—मशीनें	०·१६
६—वैज्ञानिक एवं अन्य यन्त्र-उपकरण	०·०६
७—अन्य उद्योग निर्मित पदार्थ	०·१०
८—रंग व रंगाई का सामान	०·०४
९—चमडे और चमडे का माल एवं जूते	०·०४
१०—रसायनिक पदार्थ	०·०३
११—औषधियाँ	०·०१

इस व्यापार मे भाग लेने वाले मुख्य देश निम्नांकित है :—

देश	करोड रुपये
१—मैक्सिको	२·०९
२—ब्रिटेन	१·०५
३—सिंगापुर	०·९४
४—सयुक्त राष्ट्र अमेरिका	०·५३
५—अदन	०·४४
६—लका	०·३२
७—कुवेत	०·२०
८—वेहरिन द्वीप	०·१७
९—कतार	०·१५
१०—हागकाग	०·२९
११—कीनियाँ	०·१५
१२—पश्चिमी जर्मनी	०·१३
१३—फ्रास	०·१५
१४—सऊदी अरब	०·१३
१५—अफगानिस्तान	०·१३
१६—थाईलैन्ड	०·२०

अध्याय ५

विदेशी व्यापार का विकास

(Development of Foreign Trade)

Q. 15. Explain the important factors which revolutionised India's foreign trade during the second-half of the nineteenth century.
(Agra, 1953)

उन महत्वपूर्ण बातों का विवरण दीजिये जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय व्यापार मे क्रांतिकारी परिवर्तन किये।

१६ वी शताब्दी के अन्तिम ५० वर्ष ऐसे थे जब कि भारतीय अर्थ व्यवस्था मे महत्वपूर्ण परिवर्तन और भारी क्रांति हुई। कृषि के स्वरूप, औद्योगिक सगठन, व्यापार व्यवस्था, सामाजिक मनोवृत्ति सभी प्रकार के परिवर्तन इन वर्षों मे हुए। इसी समय हमारे देश मे नूतन कार्य-प्रणाली की जड़ें जमी। इसी समय परिवहन के तीव्रगामी साधन चालू हुए तथा सिंचाई व्यवस्था का आविर्भाव हुआ।

(क) व्यापार के क्षेत्र मे मात्रा वृद्धि प्रमुख प्रवृत्ति दिखाई देती है। इन ५० वर्षों के समय को पाँच-पाँच अथवा दस-दस वर्ष के खण्डो मे बाँट दें तो हम देखेंगे कि प्रत्येक पाँच अथवा दस वर्ष की अवधि मे विदेशी व्यापार की मात्रा दुगुनी-तिगुनी होती गई। सन् १८४९-५० मे हमारा कुल व्यापार लगभग ३२ करोड रुपये आँका गया था। सन् १८५९-६० मे यह बढ़कर ७० करोड रुपये हो गया, सन् १८६९-७० मे १०० करोड़ रुपये हो गया तथा सन् १८९९-१९०० मे २१३ करोड़ रुपये। (ख) इन वर्षों मे हमारे विदेशी व्यापार की परिधि भी चौडी होती चली गई। इससे पूर्व हमारा व्यापार एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी-पूर्वी यूरोप के कुछ देशो तक सीमित था। अब वह एशिया के सभी देशो, पश्चिमी यूरोप के अनेक देशो और अफ्रीका के प्रमुख देशो तथा अमेरिका तक फैल गया। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड से भी हमारा व्यापार होने लगा। (ग) इससे पूर्व भारत छोटे आकार की किन्तु मूल्यवान औद्योगिक वस्तुओं का ही बहुधा निर्यात करता था। अँग्रेजी शासन ने भारत को एक कृषि प्रधान देश घोषित कर दिया। फलतः औद्योगिक वस्तुओं के लिये हमारा देश विदेशों पर आश्रित रहने लगा और बड़े आकार की कृषि-जन्य वस्तुओं (जो औद्योगिक कच्चे पदार्थ होते थे) का निर्यात करने लगा। यदि हम इन ५० वर्षों के निर्यात सम्बन्धी

आँकड़ो पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि रुई, जूट, तिलहन, चमडा और अन्न इत्यादि वस्तुओं का निर्यात लगातार बढ़ता चला गया। सन् १८५० मे भारत से २ करोड़ रुपये की रुई निर्यात की गयी; सन् १८६० मे ३ गुने और सन् १८७० मे ६ गुने मूल्य की रुई का निर्यात किया गया। सन् १८५० मे नौ लाख रुपये की जूट विदेश भेजी गयी, किन्तु सन् १८६० मे लगभग नौ करोड़ रुपये की जूट का निर्यात हुआ। इसी प्रकार की वृद्धि अन्य उपर्युक्त वस्तुओ के सम्बन्ध मे हुई। (घ) आयात की जाने वाली वस्तुओ मे इसके विपरीत प्रवृत्ति दिखाई दी। सूत और सूती, रेशमी एवं ऊनी वस्त्र इत्यादि विदेशी माल अधिकाधिक मात्रा मे विदेश से आने लगा। भारत विदेशी माल की बिक्री का एक मुख्य केन्द्र बन गया। सन् १८७६ मे हमारे आयात मे विदेशी माल का अनुपात ६५% आँका गया। इस अवधि के लगभग ४५ वर्ष मे अकेले सूती माल का भाग कुल आयात मे ३३% था। भारत में पहले सोना-चाँदी और बहुमूल्य धातुएँ विदेश से आया करती थी, जिनके कारण भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। उनका आयात अब सर्वथा बन्द हो गया। (ङ) यद्यपि भारत का व्यापार अब भी पूर्ववत् ही अपने पक्ष मे था अर्थात् निर्यात की मात्रा आयात से अधिक थी किन्तु इस व्यापाराधिक्य का भारत को अब कोई लाभ नही मिलता था। इस व्यापारिक शेष को ब्रिटेन की सरकार गृह खर्च के रूप मे हड़प लेती थी।

इन वर्षों मे भारत के व्यापार के आकार और विस्तार एवं स्वरूप परिवर्तन के मुख्य कारण निम्न कहे जा सकते है :

(१) सन् १८५८ मे भारत के शासन की बागडोर ब्रिटेन की सरकार के हाथ मे आ गयी; युद्ध और अशान्ति का समय समाप्त हो गया और इस भाँति आर्थिक एवं व्यापारिक उन्नति के लिए देश मे अनुकूल वातावरण बन गया।

(२) इस युग मे बडे पैमाने के उद्योगो की स्थापना हुई और कृषि के व्यापारीकरण की प्रवृत्ति दिखाई दी। इस उत्पादन वृद्धि का परिणाम व्यापारिक वृद्धि होना स्वाभाविक था।

(३) इन वर्षों मे व्यापारिक उन्नति मे सहायता पहुँचाने वाली संस्थाओ (आधुनिक बैंक और बीमा सुविधाओ) का जन्म हुआ।

(४) सन् १८५३ से प्रारम्भ होकर देश मे रेलो का जाल बिछ गया। महत्वपूर्ण आन्तरिक व्यापारिक केन्द्रो को रेलो ने बन्दरगाहो से जोड दिया और बड़े-बडे आकार की वस्तुओ का आयात-निर्यात सम्भव बना दिया। इस नूतन एवं शीघ्रगामी परिवहन-साधन ने माल के बन्दरगाहो तक पहुँचने का समय बहुत कम कर दिया। इसी समय समुन्नत डाक व तार व्यवस्था का जन्म हुआ, जिन्होने रेलो के सहयोग से व्यापार को गति और सुविधा प्रदान की।

(५) सन् १८६६ मे यूरोप और भारत के बीच स्वेज नहर का मार्ग खुल गया, जिससे ३,००० मील का अन्तर कम हो गया अर्थात् भारत और यूरोप के बीच की यात्रा कई हफ्ते कम हो गयी।

(६) स्वेज नहर के खुल जाने और व्यापारिक क्षेत्र में जहाजों की संख्या बढ़ जाने से जहाजी भाड़ों की दरें कम हो गयी।

(७) देश मे एक सरकार स्थापित होने के कारण अनेक आन्तरिक कर और बाधायें हट गयी तथा एकसे सिक्के का प्रयोग होने लगा।

(८) नहरों के निर्माण द्वारा देश मे सिंचाई व्यवस्था की गयी, जिससे उत्पादन मे अपार वृद्धि हुई और फसलों की अनिश्चितता बहुत कम हो गयी। उत्पादन बढ़ाने के और भी अनेक प्रयत्न किये गये।

(९) विदेशी पूंजी के आगमन से औद्योगीकरण और उत्पादन वृद्धि हुई, जिससे व्यापार वृद्धि मे सहायता मिली।

Q. 16. What important changes have taken place in the nature, volume and direction of India's foreign trade during the last 25 years.
(Agra, 1954)

गत पच्चीस वर्षों में भारतीय व्यापार के स्वभाव, मात्रा और दिशा मे क्या-क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं ?

भारतीय व्यापार में बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। केवल सामयिक उतार-चढ़ाव होते रहे। प्रथम युद्ध काल और आर्थिक मंदी के वर्षों में हमारे व्यापार में कमी आ गई थी, अन्यथा उसके स्वभाव और दिशा में विशेष परिवर्तन नहीं हुये। यह हमें अवश्य याद रखना है कि सन् १९३१ के उपरान्त देश से एक बड़ी मात्रा में सोने का निर्यात् होने लगा था, जो द्वितीय युद्ध प्रारम्भ होने तक जारी रहा। सन् १९३९ के उपरान्त हमारे विदेशी व्यापार मे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये, जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे किया गया है :—

(क) मूल्य वृद्धि—

द्वितीय युद्ध छिड़ते ही व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र में चहल-पहल दिखाई देने लगी। इस प्रवृत्ति का परिणाम माँग वृद्धि और आयात-निर्यात् के मूल्यों में विशेष वृद्धि था। सन् १९४५-४६ में सन् १९३८-३९ की अपेक्षा आयात सम्बन्धी सूचक-

मक (Index Number) २०५ और निर्यात सम्बन्धी २४१ तक चढ गया। इनके उपरान्त भी आयात-निर्यात के मूल्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। सन् १९५१-५२ मे आयात सम्बन्धी सूचक-अंक ४६३ और निर्यात सम्बन्धी ७१२ तक ऊँचा चढ गया। तदुपरान्त इसमें गिरावट हुई और सन् १९५५-५६ में आयात सूचक-अंक ३९६ और निर्यात सूचक-अंक ४५१ था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अब इनमें विशेष गिरावट की और सम्भावना नही है; सामान्यतः आयात-निर्यात सूचक-अंक ४००-४५० की सीमा पर स्थिर हो जायगा।

(ख) मात्रा में कमी—

युद्ध काल में हमारे व्यापार की मात्रा बहुत कम हो गई। आयात सन् १९४२-४३ तक सन् १९३८-३९ की अपेक्षा ४०% रह गया। निर्यात में इतनी कमी नहीं हुई; सन् १९४४-४५ में वह युद्ध पूर्व की अपेक्षा ५३% था। तदुपरान्त सामयिक उतार-चढ़ावों के साथ-साथ इनमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है और सन् १९५५-५६ तक आयात १२१ और निर्यात १०० की सीमा पर पहुँच गया। इसके उपरान्त के वर्षों में धीमी गति से दोनों की मात्रा में वृद्धि होती रही है।

(ग) व्यापार नियन्त्रण—

युद्धजनित विषम परिस्थितियों मे नियन्त्रित व्यापार की नीति अपनाई गई। मार्च सन् १९४० मे निर्यात पर और मई सन् १९४० मे आयात पर नियंत्रण लगा दिये गये। विदेशी विनिमय को भी नियन्त्रित किया गया। युद्ध का अन्त होने पर भी इन तीनों प्रकार के नियन्त्रणों को सामयिक हेर-फेर के साथ जारी रखा गया है।

(घ) प्रतिकूल व्यापार—

अनेक वर्षों से भारतीय व्यापार हमारे अनुकूल रहता था, किन्तु सन् १९४४-४५ से वह हमारे प्रतिकूल चला गया और अनेक यत्नों के उपरान्त भी हम उसमें विशेष सुधार नहीं कर सके। सन् १९४४-४५ मे हमारा व्यापारिक घाटा केवल तीन करोड़ रुपये था, जो सन् १९५१-५२ मे २२२ करोड रुपये और सन् १९५७-५८ मे ३७८ करोड रुपया हो गया।

(ङ) निर्यात—

द्वितीय युद्ध से पूर्व भारत एक बड़ी मात्रा मे कच्चे पदार्थ (रुई, जूट, तिलहन और खालें) निर्यात करता था। युद्ध काल मे देश मे इन वस्तुओं की खपत बढ गई और निर्यात कम होता चला गया। स्वतन्त्रता के उपरान्त हमने अपनी निर्यात नीति मे परिवर्तन किया। कच्चे माल के स्थान पर निर्मित पदार्थ निर्यात करने की नीति अपनाई गई। रुई के स्थान पर सूती कपड़ा, जूट के स्थान पर जूट का माल, तिलहन के स्थान पर वनस्पति तेल और खालों के स्थान पर चमड़े और चमड़े के

माल का अधिकाधिक निर्यात किया जाने लगा। स्वतन्त्रता के उपरान्त देश मे अनेक नये उद्योग स्थापित किये गये, जिनकी बनी हुई वस्तुये भी निर्यात की जाने लगी हैं। इनमे इंजीनियरी के पदार्थ (बिजली के पखे, सिलाई की मशीनें, साइकिलें, पानी उठाने के पम्प), जटा की वस्तुयें एव कलापूर्ण वस्तुयें इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं।

(च) आयात—

द्वितीय युद्ध से पूर्व हम कुछ खाद्यान्न निर्यात किया करते थे, यद्यपि यह हमारी अतिरेक (Surplus) स्थिति का सूचक नही था। बगाल के अकाल के उपरान्त स्थिति बदल गई। तब से हम खाद्यान्न आयात करने लगे। देश-विभाजन के उपरान्त इसमे विशेष वृद्धि हुई। दो योजनाओ के उपरान्त भी हमारा यह आयात जारी है।

युद्ध काल और उसके उपरान्त के वर्षों मे औद्योगीकरण के कारण मशीनो, रसायनिक पदार्थों और कुछ कच्चे पदार्थों का आयात विशेष बढ़ गया है। उपभोक्ता पदार्थों (सूती वस्त्र-चीनी) के स्थान पर अब हमारे आयात का प्रमुख भाग पूँजीगत माल का होता है।

(छ) सरकारी व्यापार—

द्वितीय युद्ध-काल मे भारत सरकार ने खाद्यान्न के आयात का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। यह नीति अभी तक जारी है। वस्तुतः अब भारत सरकार ने स्थाई रूप से आयात निर्यात व्यापार मे भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है और अपना क्षेत्र भी बढा दिया है। सन् १९५६ मे इस कार्य को करने के लिये राजकीय व्यापार निगम की स्थापना की गई, जो सीमेंट, कास्टिक सोडा, रेशम, उर्वरक और खड़िया इत्यादि आयात करती है तथा लोहा, मैंगनीज, जूते, शिल्प कला की वस्तुयें, नमक, चाय, काफी, ऊनी वस्त्र इत्यादि का निर्यात करती है। इस भाँति सरकारी व्यापार उत्तरोत्तर बढता जा रहा है।

(ज) दिशा—

अंग्रेजी शासन के स्थापित होने के समय से भारत के विदेशी व्यापार का एक बड़ा भाग ब्रिटेन और साम्राज्य के अन्य देशो के साथ होता रहा। प्रथम युद्ध काल के वर्षों मे इस स्थिति मे परिवर्तन प्रारम्भ हुये, जो द्वितीय युद्ध के उपरान्त विशेष दिखाई दिये। सन् १९३८-३९ मे भारत के कुल व्यापार मे ब्रिटेन का भाग ३२% था, जो कि सन् १९४५-४६ मे २६% और सन् १९५७ मे केवल २४% रह गया। इसके विपरीत सयुक्तराष्ट्र अमेरिका, जर्मनी और जापान के साथ हमारा व्यापार बढता गया है। गत दशाब्दी मे यूरोप के स्थान पर उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के देशो के साथ हमारे व्यापार मे वृद्धि होती दिखाई

दी है। गत २० वर्ष मे दक्षिणी-पूर्वी एशिया और मध्य-पूर्व के देशों मे हमारा व्यापारिक सम्पर्क विशेष बढा है।

(भ) द्विदेशीय समझौते—

स्वतन्त्र भारत मे द्विदेशीय समझौतों का व्यापारिक विकास मे विशेष स्थान रहा है। समय-समय पर अनेक देशो के साथ ऐसे समझौते गाट (G.A.T.T.) के अन्तर्गत किये गये है, जिनमे से अब २७ समझौते जारी हैं।

Q. 17. What important changes have taken place in the nature, volume, value and direction of India's foreign trade during Second War and post-war period ? **(Alld., 1951)**

युद्ध और युद्धोत्तर काल में भारत के व्यापार के स्वभाव, परिमाण और दिशा मे क्या-क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर वही है जो प्रश्न संख्या १६ का है।

Q. 18. What have been the chief characteristics and main trends of India's foreign trade since 1947 ?

(Agra, 1956, 1957 ; Alld , 1956)

सन् १९४७ से अब तक भारत के विदेशी व्यापार की क्या-क्या मुख्य विशेषतायें हैं ?

परतन्त्र भारत मे व्यापार सरिता का प्रवाह सर्वथा राष्ट्रीय हित मे नही था; बहुधा हमारी व्यापारिक नीति ब्रिटेन के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास का साधन थी। स्वतन्त्र भारत मे इस नीति मे परिवर्तन आवश्यक था। सन् १९४७ से हमने ऐसे यत्न किये हैं जिनके द्वारा हमारे व्यापार का विकास राष्ट्रीय हित मे हो। हमारी इस नीति का स्पष्टीकरण तब से अब तक की मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियो और आदर्शों को देखकर किया जा सकता है। ये प्रवृत्तियाँ और आदर्श निम्नांकित हैं :

(१) मूल्य वृद्धि—

सन् १९३८-३९ से हमारे आयात-निर्यात के मूल्यो में तेजी से वृद्धि होनी शुरू हुई। यद्यपि कुछ वर्षों मे हमारे आयात-निर्यात की मात्रा में भारी कमी आ गई थी, तो भी उनके मूल्यो मे उत्तरोत्तर इतनी वृद्धि होती रही कि व्यापार बढ़ता हुआ दिखाई देता है। सन् १९४७-४८ मे हमारे कुल व्यापार का मूल्य ८१२ करोड़ रुपये

था, जो कि सन् १९५७-५८ मे १,६२३ करोड रुपये अर्थात् ठीक दुगुना (आयात २¾ गुना और निर्यात १½ गुना) हो गया। सन् १९३८-३९ की अपेक्षा सन् १९४७-४८ मे आयात सूचक-अंक ३ गुना और निर्यात सूचक-अंक ३½ गुना हो गया था। इसके उपरान्त भी यह वृद्धि जारी रही और सन् १९५१-५२ मे आयात सूचक-अंक ४६३ और निर्यात सूचक-अंक ७१२ था। इसके उपरान्त व्यापारिक मूल्य स्थिर होने गये है और सन् १९५५-५६ मे सन् १९३८-३९ की अपेक्षा आयात सूचक-अंक ४ गुना और निर्यात सूचक-अंक ४½ गुना था।

(२) मात्रा—

स्वतन्त्रता के समय हमारे आयात की मात्रा सन् १९३८-३९ की अपेक्षा १२% अधिक और निर्यात की २०% कम थी। तदुपरान्त कुछ वर्ष तक आयात और निर्यात दोनों मे ही थोड़ी वृद्धि होती रही, सन् १९५१-५२ मे आयात सूचक-अंक १४७ तक चढ गया और निर्यात सूचक-अंक सन् १९५०-५१ तक ९५ की सीमा के निकट पहुँच गया। तब से हमारी व्यापारिक घाटा कम करने की नीति के कारण आयात मे कमी और निर्यात मे वृद्धि होती रही है और द्वितीय योजना के प्रारम्भ होने तक हमारे आयात-निर्यात दोनों ही की मात्रा उस सीमा के निकट पहुँच गई थी जिस सीमा पर वह द्वितीय युद्ध से पूर्व थी। तब से इसमे कुछ वृद्धि होती जा रही है।

(३) आयात—

हमारे आयात व्यापार की मुख्य विशेषता खाद्यान्न, रुई, जूट, पूँजीगत माल खनिज तेल, रसायनिक पदार्थ इत्यादि वस्तुओं के आयात मे उत्तरोत्तर वृद्धि है। देश के विभाजन के फलस्वरूप हमारी खाद्य समस्या विशेष भयानक हो गई और बडी मात्रा मे गेहूँ और चावल हमें आयात करने पडे। प्रथम योजना के अन्त में यह आयात केवल १०-१२ लाख टन रह गया था, किन्तु सन् १९५८ मे यह फिर से लगभग ३३ लाख टन हो गया। देश के विभाजन के कारण हमारे देश को जूट का आयात करना आवश्यक हो गया, क्योंकि इसके उत्पादन का एक बडा क्षेत्र पाकिस्तान मे चला गया। अनवरत यत्नों के उपरान्त भी हम स्वावलम्बी नही हो सके। बडे रेशे की रुई का आयात भी देश-विभाजन का एक कारण है। पूँजीगत माल और मशीनों, रसायनिक पदार्थों, खनिज तेल इत्यादि का अधिकाधिक यातायात देश की औद्योगिक प्रगति का सूचक है। मोटर और विमान व्यवसाय की उन्नति के कारण देश मे तेल शोधनशालाओं का खुलना, खनिज तेल के अधिकाधिक यातायात का कारण है।

(४) निर्यात—

स्वतन्त्र भारत मे कच्चे पदार्थों का निर्यात कम करने अथवा बन्द करने के यत्न किये गये हैं और इनके स्थान पर निर्मित पदार्थों के निर्यात को प्रोत्साहन दिया

गया है। जूट के माल, सूती वस्त्र, चमडा व चमडे का माल, वनस्पति तेल और घी, मसाले इत्यादि परम्परागत वस्तुओ के निर्यात मे गत वर्षो मे सामयिक उतार-चढावो के साथ वृद्धि होती गई है। नये उद्योगो मे निर्मित पदार्थ भी कुछ निर्यात किये जाने लगे है।

(५) व्यापारिक घाटा—

स्वतन्त्रता के समय हमारा व्यापार हमारे विपक्ष मे था। तब से यह इसी प्रकार चलता रहा है। सन् १९४७-४८ मे हमारा व्यापारिक घाटा लगभग ३८ करोड रुपये थे। सन् १९५१-५२ मे बढकर २२२ करोड रुपये और सन् १९५७-५८ मे ३७८ करोड रुपये हो गया, यद्यपि बीच के कुछ वर्षो मे इसमे कमी आ गई थी (सन् १९५३-५४ मे केवल ५० करोड रुपये था)।

(६) व्यापार नियन्त्रण—

जो नियन्त्रण युद्ध-काल मे लगाये गये थे उन्हे स्वतन्त्रता-काल मे जारी रखना आवश्यक समझा गया, यद्यपि आवश्यकतानुसार इन्हे समय-समय पर ढीला और कडा किया जाता रहा है। ये नियन्त्रण तीन प्रकार के है: आयात नियन्त्रण, निर्यात नियन्त्रण और विदेशी विनिमय नियन्त्रण। आयात को सीमित करने, निर्यात को बढाने और विदेशी विनिमय का सदुपयोग करने मे इन नियन्त्रणो से काम लिया गया है। परम्परागत बाजारो को बनाये रखने और नई वस्तुओ के लिये बाजार खोजने के निमित्त भी यह नीति अपनाई गई है। सन् १९४७ तक विदेशी विनिमय सम्बन्धी नियन्त्रण स्टर्लिंग क्षेत्र पर लागू नहीं होता था, किन्तु जुलाई सन् १९४७ से इस क्षेत्र पर भी इसे लागू किया जाने लगा। नेपाल, भूटान, तिब्बत और पुर्तगाली भारत को छोडकर अन्य सब क्षेत्रो पर यह नियन्त्रण अब लागू है।

(७) दिशा—

स्वतन्त्रता के समय भारतीय व्यापार पर द्वितीय युद्ध का गहरा प्रभाव जारी था। कई यूरोपीय और अन्य देशो के साथ हमारा व्यापार सर्वथा बन्द था और कई देशो के साथ युद्ध-पूर्व की अपेक्षा कम हो गया था, क्योंकि सभी देशो ने अपने-अपने व्यापार पर भारी प्रतिबन्ध और ऊँचे कर लगा रखे थे। स्वतन्त्र होने पर हमने उन सभी देशो के साथ व्यापार बढाने का यत्न किया जिनके साथ पहले हमारा व्यापार होता था। कुछ नये देशो के साथ भी हमने व्यापारिक सम्बन्ध जोडा। द्वितीय युद्ध-काल मे दक्षिणी-पूर्वी एशिया और मध्य पूर्व के देशो के साथ हमारा व्यापार बढ गया था। इस सम्बन्ध को स्थाई रूप देने के यत्न गत वर्षो मे किये गए है। फलस्वरूप यूरप के देशो की अपेक्षा हमारे व्यापार की दिशा एशिया, अफ्रीका और अमेरिका (उत्तरी और दक्षिणी) की ओर गत वर्षो मे बढती गई है। स्वतन्त्रता काल मे रूस और अन्य साम्यवादी देशो के साथ हमने नया व्यापारिक सम्बन्ध जोडा है। इस दिशा-परिवर्तन

का परिणाम यह हुआ है कि ब्रिटेन और साम्राज्य के देशो के साथ हमारा व्यापार कम होता जा रहा है।

(८) सरकारी व्यापार—

द्वितीय युद्ध काल मे सरकार ने सीमित क्षेत्र मे व्यापार आरम्भ किया था। स्वतन्त्रता काल मे इसे एक स्थायी नीति मान लिया गया है और सरकारी व्यापार का क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इस काम के लिये सन् १६५६ मे राजकीय व्यापार निगम और सन् १६५७ मे निर्यात-जोखिम बीमा निगम की स्थापना की गई। सन् १६५६ से भारत सरकार ने विदेशी व्यापार के अतिरिक्त देश के अन्तर्गत खाद्यान्न का थोक व्यापार भी प्रारम्भ कर दिया है।

(६) द्विदेशीय समझौते—

स्वतन्त्र भारत मे द्विदेशीय समझौतो का व्यापारिक विकास मे विशेष स्थान रहा है। समय-समय पर अनेक देशो के साथ ऐसे समझौते गाट (G. A. T. T.) के अन्तर्गत किये गये हैं, जिनमे से अब २७ समझौते जारी हैं।

Q. 19. What important changes have taken place in the nature, volume, value and direction of India's foreign trade since 1939 ?

(Agra, 1960)

सन् १६३६ से अब तक भारत के विदेशी व्यापार के स्वरूप, मात्रा, मूल्य एवं दिशा मे क्या क्या मुख्य परिवर्तन हुए हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर वही है जो प्रश्न १६ का।



अध्याय ६

सरकारी नियन्त्रण एवं नीति

(State Control and Policy)

Q. 20. How is India's foreign trade controlled and regulated at present ? Discuss fully. (Agra, 1954)

इस समय भारत के व्यापार का नियन्त्रण और नियमन कैसे होता है ? पूर्णतः वर्णन कीजिए।

भारत सरकार को आयात-निर्यात नियन्त्रण अधिनियम सन् १९४७ (Import Export Control Act) के अन्तर्गत व्यापार पर नियन्त्रण लगाने का अधिकार प्राप्त है। इसी अधिकार के अनुसार भारत सरकार समय-समय पर आदेश निकाल कर आयात-निर्यात माल को नियन्त्रण के अन्तर्गत लाती है। हर छमाही के लिये ऐसे आदेश निकाले जाते हैं। ऐसा आदेश निकलने के उपरान्त सम्बद्ध वस्तुओं को बिना लाइसेन्स लिये आयात अथवा निर्यात नहीं किया जा सकता।

नियन्त्रण संगठन—

नियन्त्रण सङ्गठन का सर्वोच्च अधिकारी मुख्य आयात-निर्यात नियन्त्रक (Chief Controller of Imports and Exports) है, जिसका प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में है। इसके अधीन ७ अधिकारी और है, जो कि अपने-अपने क्षेत्र मे उसके प्रतिनिधि रूप मे काम करते हैं:—

(१) संयुक्त मुख्य आयात-निर्यात नियन्त्रक (Joint Chief Controller of Imports and Exports), बम्बई।
(२) संयुक्त मुख्य आयात-निर्यात नियन्त्रक, कलकत्ता।
(३) संयुक्त मुख्य आयात-निर्यात नियन्त्रक, मद्रास।
(४) उपमुख्य (Deputy Chief) आयात-निर्यात नियन्त्रक, कोचीन।
(५) आयात-निर्यात नियन्त्रक, पाण्डेचेरी।
(६) आयात-निर्यात नियन्त्रक, विशाखापत्तनम्।
(७) आयात-निर्यात व्यापार नियन्त्रक, राजकोट।

सामान्य लाइसेन्स की श्रेणी में गिनी जाती है तथा कुछ के लिये परिमाण सीमा बांध दी जाती है और कुछ के लिये विशेष प्रकार के आयात लाइसेन्स दिये जाते हैं।

जिन वस्तुओं पर निर्यात नियन्त्रण लागू है उन्हें निर्यात नियन्त्रण आदेश (Export Control Order), सन् १९५४ के परिशिष्ट की अनुसूची १ में बताया गया है। इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया गया है: (क) पशु खाद्य, पेय एवं तम्बाकू, (ख) कच्चे पदार्थ, (ग) निर्मित माल। जो वस्तुयें इस सूची में नहीं आतीं वे नियंत्रण से मुक्त हैं और यदि कोई अन्य कानून बाधक न हो तो बिना लाइसेन्स देश के बाहर भेजी जा सकती हैं। इस अनुसूची में आने वाली वस्तुओं में से भी कुछ को समयानुसार 'खुले सामान्य लाइसेन्स' के अन्तर्गत सम्मिलित करके लाइसेन्स के झंझटों के बिना निर्यात की अनुमति दी जाती है। सामान्यतः तीन प्रकार के निर्यात लाइसेन्स दिये जाते हैं: (क) पुराने निर्यातक, (ख) नये निर्यातक, (ग) उत्पादक।

Q. 21. What steps Government of India has taken for the promotion of exports in recent years? Have you any more suggestions to offer in this connection? (Agra, 1959)

गत वर्षों में भारतीय निर्यात बढ़ाने के भारत सरकार ने क्या यत्न किये हैं? क्या आप इस सम्बन्ध में कोई अन्य सुझाव दे सकते हैं?

निर्यात बढ़ाने के लिये प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के यत्न किये गये हैं। प्रत्यक्ष यत्न वे हैं जिनके द्वारा निर्यात माल का उत्पादन बढ़ाया जाता है, उसका मूल्य कम किया जाता है, अथवा निर्यात बढ़ाने के यत्न किये जाते हैं। अप्रत्यक्ष प्रयत्न वे हैं जिनके द्वारा निर्यात माल को बन्धन-मुक्त किया जाता है अथवा उनके कर हटाये अथवा घटाये जाते हैं। गत वर्षों में किये गये यत्नों में से निम्नांकित विशेष उल्लेखनीय हैं:—

(१) संस्थागत प्रबन्ध—

भारतीय माल के लिये बाजार खोजने, विदेशों में उसका प्रचार करने, निर्यात सम्बन्धी आवश्यक आँकड़े सङ्कलित करने, निर्यातकों को सुविधायें और सूचना देने एवं निर्यात माल का गुण सुधारने और तत्सम्बन्धी नीति निर्धारित करने के निमित्त भारत सरकार ने गत वर्षों में कई संस्थायें स्थापित की हैं: (क) विदेशी व्यापार बोर्ड, (ख) निर्यात सम्वर्द्धन निदेशालय (Directorate of Export Promotion), (ग) बड़े बन्दरगाहों पर केन्द्रीय अधिकारी (Field Officers), (घ) निर्यात सम्वर्द्धन परिषदें, (ङ) वस्तु बोर्ड (Commodity Boards), (च) प्रदर्शिनी निदेशालय (Directorate of Exhibition), (छ) प्रचार विभाग, (ज) वाणिज्य सूचना निदेशालय, तथा (झ) विदेशों में व्यापार प्रतिनिधि।

(२) निर्यात सम्वर्द्धन परिषदें—

ऊपर लिखी हुई संस्थाओं में निर्यात सम्वर्द्धन में इन परिषदों का विशेष योग रहा है। सन् १९५४ से अब तक ११ ऐसी परिषदें बन चुकी हैं : सूती वस्त्र, रेशम तथा रेयन, प्लास्टिक, इन्जीनियरी, काजू तथा काली मिर्च, तम्बाकू, चपड़ा, खेल का सामान, अभ्रक, चमड़ा और चमड़े का सामान तथा रसायनिक पदार्थ। अन्य महत्वपूर्ण निर्यात वस्तुओं के लिये भी एसी परिषदें बनने की सम्भावना है।

इन परिषदों का मुख्य काम निर्यात योग्य वस्तुओं का विदेशों में बिक्री की सम्भावनाओं का सर्वेक्षण, विदेशी बाजारों का सर्वेक्षण तथा उद्योग विशेष का सर्वेक्षण करना है। निर्यात माल का गुण-नियन्त्रण भी ये करती हैं। विदेशों को प्रतिनिधि मण्डल भेजना, विदेशी मेलों मे माल का प्रदर्शन, आयातकों और निर्यातकों को एक-दूसरे के निकट लाना और उनके झगड़े सुलझाना भी इनका कर्त्तव्य है।

(३) व्यापारिक प्रतिनिधि—

भारत सरकार द्वारा गत वर्षों में ३६ देशों मे व्यापार प्रतिनिधि नियुक्त किये गये है, जो स्थाई रूप से उन देशों में रहते हैं और वहाँ के लोगो की रुचि, स्वभाव, माँग एवं भावनाओं के विषय में निर्यात माल के निर्माताओं और निर्यातकों को आवश्यक जानकारी कराते हैं। इस भाँति वे उन देशों में भारतीय माल की माँग बढ़ाते है।

(४) व्यापारिक शिष्ट मण्डल—

व्यापारिक शिष्ट मण्डलों का आदान-प्रदान भी व्यापार-वृद्धि का एक महत्वपूर्ण साधन है। भारत सरकार समय-समय पर ऐसे शिष्ट मण्डल विदेश भेजती रही है और विदेशों से आये हुये शिष्ट मण्डलो का स्वागत करती रही है। इनके द्वारा व्यापारियों अथवा उच्च अधिकारियों को विदेशों की व्यापारिक सम्भावनाओं एवं प्रथाओं तथा वित्तीय अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिलता है। निर्यात-सम्वर्द्धन परिषदों द्वारा भेजे गये व्यापारिक शिष्ट मण्डलों के अतिरिक्त भारत सरकार ने मई सन् १९५६ में एक औद्योगिक एव वाणिज्य सद्भावना मण्डल (Industrial Cum Commercial Goodwill Mission) स्वीडन, फिनलैण्ड और डेनमार्क भेजा था। इसी प्रकार का एक व्यापार-शिष्ट मण्डल सन् १९५७ मे पश्चिमी जर्मनी गया और कम्बोडिया को उसी वर्ष विशेषज्ञों का एक सर्वेक्षण मण्डल भेजा गया। सन् १९५८ मे तीन व्यापार शिष्ट मण्डल अफगानिस्तान, जापान तथा रूस एव पूर्वी यूरप गये। इसी वर्ष घाना, सऊदी अरब, संयुक्त अरब गणराज्य, जजीबार, लंका और यूगंडा से शिष्ट मण्डल भारतवर्ष आये।

(५) सीमा तथा उत्पादन शुल्क में छूट (Drawback of Import and Excise duties)—

भारत सरकार ने महत्वपूर्ण निर्यात वस्तुओं को विदेशी प्रतियोगिता में बचाने के लिए उन उद्योगों में प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल पर आयात कर में कुछ छूट दी है। इसी भाँति कुछ निर्यात वस्तुओं पर उत्पादन कर में भी कुछ छूट दी जाती है। लगभग ५६ वस्तुओं पर आयात कर सम्बन्धी छूट देने के लिए अब तक नियम बनाये जा चुके हैं और २१ अन्य वस्तुओं के लिए ऐसे नियम बनाये जा रहे हैं।

(६) निर्यात-नियंत्रण और कर हटाना—

निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिये समय-समय पर कुछ वस्तुओं से निर्यात कर हटाये और कुछ के सम्बन्ध में घटाये गये हैं। जूट के माल, काली मिर्च, मोटा कपड़ा, वनस्पति तेल, तिलहन, खली इत्यादि से निर्यात कर उठा लिये गये हैं। करों के अतिरिक्त नियंत्रणों को हटाकर अथवा ढीला करके भी निर्यात-वृद्धि की जाती है। गत वर्षों में लगभग २०० वस्तुयें नियंत्रण मुक्त कर दी गई हैं और अनेक वस्तुओं से परिमाण सीमा (Quota) सम्बन्धी रुकावटें कम की गई हैं। कुछ नियंत्रित वस्तुओं के लिये उदार लाइसेन्स देकर उनका निर्यात बढ़ाया जाता है।

(७) गुण-नियंत्रण—

निर्यात बढ़ाने के लिये माल का गुण-नियंत्रण परम आवश्यक है। निम्न कोटि का माल निर्यात करने के कारण कई बार बनी हुई साख को धक्का पहुँचा है और हमारा निर्यात कम हो गया है। भारत सरकार का इस ओर गत वर्षों में ध्यान गया है और गुण-नियंत्रण के लिये नियम बनाये गए हैं। कृषि उपज (वर्गीकरण एवं बिक्री) अधिनियम सन् १९३७ के अन्तर्गत कुछ कृषिजन्य पदार्थों के निर्यात से पूर्व भारत सरकार ने उनकी श्रेणीबद्धता अनिवार्य कर दी है। ऐसी वस्तुयें तम्बाकू, सन, ऊन, सूअर के बाल और चन्दन का तेल हैं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कोचीन तथा राजकोट में पाँच प्रादेशिक नियंत्रण प्रयोगशालायें खोली गई हैं, जो निर्यात होने वाली वस्तुओं का विश्लेषण करती हैं। इन प्रयोगशालाओं के कार्यों में समन्वय लाने के लिये नागपुर में एक केन्द्रीय प्रयोगशाला भी खोली गई है। राज्य की सरकारों ने भी अपने यहाँ गुण-नियंत्रण विभाग खोले हैं। निर्यात सम्वर्द्धन परिषदें और भारतीय प्रतिमान संस्था भी निर्यात माल के गुण सुधार का यत्न करती हैं।

(८) विशेष योजनायें—

निर्यात सम्वर्द्धन परिषदों और उद्योग व्यापार मंत्रालय के विकास कक्ष द्वारा कुछ चुनी हुई वस्तुओं के लिये निर्यात सम्वर्द्धन की विशेष योजनायें बनाई गई है। इनके अन्तर्गत उन लोगों को आवश्यक कच्चा माल और कल पुर्जे मगाने के लिए लाइसेन्स दिये जाते हैं जो किसी निश्चित सीमा तक उन वस्तुओं का निर्यात करते हैं, ताकि वे अपनी निर्धारित सीमा को पूरा कर सकें। ऐसी योजनायें इन्जीनियरी के

माल, ऊनी माल, प्लास्टिक की वस्तुयें, कृत्रिम रेशमी वस्त्र तथा रसायनिक पदार्थों के लिये बनाई जा चुकी हैं।

(९) प्रदर्शिनियां और मेले—

भारत के वर्तमान बाजारो को बनाये रखने, विदेशो मे माल की मांग बढाने तथा निर्यात वस्तुओ के लिये नये बाजार खोजने के विचार से भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनियो और मेलो मे भाग लेने की व्यवस्था की है। कभी-कभी भारत सरकार विदेशो मे अपने माल के प्रचार के निमित्त प्रदर्शिनियां करती है। देश मे भी औद्योगिक प्रदर्शिनियां की जाती हैं। गत वर्षों मे काहिरा, दमिश्क और खारतूम मे भारत सरकार की ओर से प्रदर्शिनियां की गईं तथा नई दिल्ली मे सन् १९५५-५६ और सन् १९५८ से औद्योगिक प्रदर्शिनियो का आयोजन किया गया। नई दिल्ली मे प्रति वर्ष ऐसी प्रदर्शिनयां करने का चलन सा हो गया है।

(१०) प्रदर्शन-केन्द्र—

कुछ देशो मे भारतीय दूतावासो की देख-रेख मे स्थायी रूप से प्रदर्शन-कक्ष, व्यापार-केन्द्र और भण्डार (Emporium) भी खोले गये हैं, जहां भारतीय माल के नमूने प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसे केन्द्र कोलम्बो, बैंकाक, न्यूयार्क, लन्दन, बोन, सैनफ्रांसिसको, काहिरा, टोक्यो, जकार्ता, सिंगापुर, जिनेवा, पेरिस, ओटावा इत्यादि नगरो मे खोले गये हैं और अन्यत्र भी खोले जा रहे हैं।

(११) निर्यात जोखिम बीमा निगम—

भारत सरकार ने जुलाई सन् १९५७ मे निर्यात जोखिम बीमा निगम की स्थापना करके निर्यात सम्बन्धी अनेक जोखिमो से निर्यातकर्त्ताओ की सुरक्षा की है। यह निगम बीमा करने वाले को ऐसी हानियां पूरी करने का वचन देती है जिनके लिये सामान्य बीमा कम्पनियां कोई उत्तरदायित्व नहीं लेती, जैसे विदेशी आयातकर्त्ता का दिवालिया होना, उसका भुगतान न करना, लडाई, गृहयुद्ध, पथ-भ्रष्टता, हस्तातरण, आयात-निर्यात नियत्रण, विदेशी मुद्रा सम्बन्धी प्रतिबन्ध इत्यादि।

(१२) राजकीय व्यापार निगम—

कुछ वर्ष से भारत सरकार स्वय भी व्यापार करने लगी है। इस काम को करने के लिये मई सन् १९५६ मे राजकीय व्यापार निगम की स्थापना की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य चुनी हुई वस्तुओ का निर्यात बढाना है। जिन देशो की अर्थ-व्यवस्था पूर्णत सरकारी नियत्रण मे है उन देशो के साथ निगम ही व्यापार कर सकता है। रूस, चीन और अन्य साम्यवादी देशो मे भारतीय माल के लिये निगम ने नये-नये बाजार खोज निकाले हैं। निगम का व्यापार क्षेत्र प्रति वर्ष बढता जा रहा है।

(१३) परिवहन सुविधायें—

परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयो के कारण भी निर्यात मे बाधा पड़ती है। इस असुविधा को दूर करने के लिये भारत सरकार ने अनेक निर्यात वस्तुओं के

लिय रेलो से बन्दरगाहो तक सत्वर गमन की सुविधायें दी हैं। इन सुविधाओं के अन्तर्गत निर्यात माल को अन्य माल की अपेक्षा बन्दरगाह ले जाने मे प्राथमिकता दी जाती है। निर्यात माल के लिये जहाजी स्थान दिलाने में भी भारत सरकार सहायता करती है।

(१४) निर्यात प्रवर्तन समिति—

भारतीय निर्यात बढाने के निमित्त सन् १९५७ मे भारत सरकार ने निर्यात् प्रवर्तन समिति की नियुक्ति की थी। इस समिति ने निर्यात बढाने के अनेक सुझाव दिये, जिनमे से विशेष उल्लेखनीय सुझाव निम्न हैं —(क) अदृश्य निर्यात अर्थात बैंक, बीमा एवं पोतचालन सेवाओ की उन्नति, (ख) पर्यटन सुविधाये, (ग) निर्यात वस्तुओ की उत्पादन वृद्धि, (घ) निर्यातको को आयकर और सीमा शुल्क सम्बन्धी छूट, (ङ) पुनः निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन, (च) रिजर्व बैंक, राजकीय बैंक और वाणिज्य बैंको द्वारा अधिकाधिक साख सुविधायें, (छ) भारतीय विदेशी सेवा अधिकारियों को वाणिज्य प्रशिक्षण, (ज) बाजार सर्वेक्षण, (झ) प्रभावशाली प्रचार, (ञ) निर्यात वस्तुओं का आकर्षक सवेष्टन इत्यादि।

(१५) अन्य सुझाव—

(क) क्रिया विधि सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर करके, (ख) निर्यात नियन्त्रण आदेश मे सशोधन करके, (ग) महत्वपूर्ण निर्यात वस्तुओ से निर्यात कर हटा कर, (घ) बन्दरगाहो पर स्थान सम्बन्धी सुविधायें बढा कर, (ङ) व्यापारिक पर्यटन के निमित्त उपयुक्त विदेशी विनिमय देकर तथा (च) भारतीय पोत चालन की उन्नति करके भी निर्यात बढाया जा सकता है।

Q. 22. Write short note on (a) Trade Control Organisation, (b) Customs duty, (c) Dollar Area, (d) New comers, (e) Actual users, (f) O. G L

संक्षिप्त विवरण दीजिए : (क) नियन्त्रण संगठन, (ख) सीमाशुल्क, (ग) डालर क्षेत्र, (घ) नवागन्तुक, (ङ) वास्तविक उपभोक्ता, (च) खुला सामान्य लाइसेन्स।

(क) नियन्त्रण संगठन—

नियन्त्रण सगठन का उल्लेख प्रश्न सख्या १७ मे किया गया है।

(ख) सीमा शुल्क—

माल के विदेश से देश की सीमा के अन्तर्गत आते समय अथवा देश की सीमा से बाहर जाते समय जो कर लिया जाता है उसे सीमा शुल्क कहते हैं। यह

कर आयात और निर्यात माल पर सरकार द्वारा निर्धारित की हुई दरों के अनुसार लिया जाता है। यह कर सामान्यत. दो प्रकार का होता है। एक वह जो केवल सरकारी आय का साधन समझा जाता है और दूसरा वह जो देशी उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता का सामना करने की शक्ति प्रदान करने के लिए रक्षित उद्योगों के निमित्त लगाया जाता है।

आयात-कर की सामान्य दर इस समय ३५% है। कुछ विलायती वस्तुओं पर ७५ से २०० प्रतिशत तक कर लगता है। निर्यात कर कुछ चुनी हुई वस्तुओं पर लगता है। विदेशी माँग और प्रतियोगिता का ध्यान रख कर निर्यात कर में परिवर्तन होते रहते हैं।

सीमा शुल्क भारत सरकार की वार्षिक आय का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसमें प्रति वर्ष लगभग पौने दो करोड़ रुपए की आय होती है। सन् १९५९-६० के सीमा शुल्क के अनुमान इस प्रकार थे —

(क) सामुद्रिक व्यापार आयात कर	११० ६२	करोड़ रुपए
(ख) सामुद्रिक व्यापार निर्यात कर	१७ ८८	,, ,,
(ग) स्थलीय व्यापार	२ ८०	,, ,,
(घ) वायु द्वारा व्यापार	० ६०	,, ,,
(ङ) विविध	१ ६०	,, ,,
जोड़	१२३ ५०	,, ,,

(ग) डालर क्षेत्र—

डालर क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नांकित देश सम्मिलित हैं —(१) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और उसके अधीन देश, (२) कनाडा व न्यूफाउन्डलैण्ड, (३) अन्य अमेरिकन हिसाब-किताब के देश फिलिप्पाइन द्वीप, बोलीविया, कोलम्बिया, कास्टारिका, क्यूबा, इक्वेडोर, ग्वाटीमाला, हेटी, हन्डूरस, मैक्सिको, निकारा-गुआ, पनामा, साल्वाडोर, वेनेजुला, लाइबीरिया।

ये वे देश हैं जिनमें डालर सिक्के का चलन है अथवा जिनके व्यापार सम्बन्धी लेन-देन का हिसाब-किताब डालर के माध्यम द्वारा भुगतान किया जाता है।

(घ) नवागन्तुक—

नवागन्तुक वे आयातकर्त्ता कहे जाते हैं जिन्होंने कभी पहले उस वस्तु का आयात नहीं किया जिसके लिये वे लाइसेन्स लेना चाहते हैं, किन्तु जो एक वर्ष तक अन्तर्देशीय क्षेत्र में उस वस्तु का व्यापार करते रहे हैं।

अध्याय ७

आयात-व्यापार

(Import Trade)

Q. 23. What are the principal commodities which India imports ? Which countries supply them ? What is the place of these commodities in our total import trade and what are their future possibilities ?

भारत की मुख्य आयात वस्तुयें कौन-कौन हैं ? इन्हें देने वाले कौन देश हैं ? हमारे आयात व्यापार में इन वस्तुओं का क्या स्थान है तथा भविष्य में इनकी क्या संभावनायें हैं ?

भारत की आयात वस्तुओं में प्रमुख मशीनें, धातु-पदार्थ, खाद्यान्न, खनिज तेल, परिवहन उपकरण, बुनाई के रेशे एवं रसायनिक पदार्थ हैं। इनका हमारे कुल आयात में ८०% भाग है और यह भाग गत वर्षों में बढ़ता चला गया है। सन् १९३८-३९ में इनका सम्मिलित भाग कुल आयात में ५३ प्रतिशत था, सन् १९४८-४९ में यह ६३ प्रतिशत, सन् १९५१-५२ में ७० प्रतिशत और सन् १९५६ में ८०% हो गया। इनका वार्षिक मूल्य और सापेक्षक महत्व नीचे की तालिका में दिखाया गया है —

भारतीय आयात की प्रमुख वस्तुएँ

वस्तु	१९३८—३९		१९४८—४९		१९५८		१९५९	
	क० रु०	%	क० रु०	%	क० रु०	%	क० रु०	%
१—मशीनें	१६ ४०	१२ ६	८० ८७	१२ २	१८८'६२	२२	१६६ २१	२२
२—धातुयें एवं धातु-पदार्थ	१० ८४	७ १	३२'६८	५ ०	५० ७७	१७	१४४ २१	१६
३—खाद्यान्न	१३ ७६	६ ०	१३१ ३०	१६ ७	१४८ ८४	१७	१२२ ६६	१४
४—खनिज तेल	१४ ६७	६ ७	३५ ८१	५ ४	७५ ६३	६	७८ ०२	६
५—परिवहन उपकरण	६ ६८	४ ४	३२ ६८	४ ६	५६ ४८	७	७० ४२	८
६—रुई एवं अन्य बुनाई के रेशे	११ ६६	७ ६	८१ ६०	१२ ३	४६ १०	५	४६ ८७	५
७—रसायनिक पदार्थ	३ ०५	२ ०	२० ५७	३ १	३६ ६३	४	५१ १७	६
जोड	८० ०६	५२ ७	४१६ ११	६२ ६	७०६ ६७	८१	७०६ ८६	८०
कुल आयात का जोड	१५२ ३३	१००	६६५ ५६	१००	८६४ १८	१००	८८७ ३८	१००

इ डोचीन, लका, पाकिस्तान, इटली, थाइलैंड, मिस्र से आता है । दालें सूडान, ईराक, ब्रह्मा, पाकिस्तान तथा कीनिया से ।

(४) खनिज तेल—

सदैव से भारत खनिज तेलो का आयातकर्त्ता रहा है । मिट्टी का तेल, जलाने का तेल, डीजिल तेल, उपस्नेहन तेल, विमान स्प्रिट, इत्यादि विविध तेल भारत आयात करता है । सन् १९५८ मे ७६ करोड रुपए के तेल भारत आए, जो कुल आयात का ९% था ।

ब्रह्मा के अलग होने और पाकिस्तान बनने के उपरान्त खनिज तेलो का हमारा आयात बढता गया है, क्योंकि इन क्षेत्रो मे बहुत तेल मिलता था । युद्ध-काल मे विमान और मोटर परिवहन के विकास के कारण खनिज तेलो का उपभोग बढने से भी आयात मे वृद्धि हुई । युद्ध के समाप्त होने ही आयात कुछ कम हुआ, किन्तु शीघ्र ही इसमें फिर वृद्धि होने लगी, क्योंकि स्वतन्त्र भारत मे विमान और मोटर परिवहन का ही तेजी से विकास नहीं हुआ वरन् औद्योगीकरण की अनेक योजनायें छेडी गई । प्रथम योजना-काल मे तीन और द्वितीय योजना-काल मे दो तेल शोधनशालायें खोली गई । इससे हमारी कच्चे तेल की माग और भी बढ गई है । किन्तु हाल मे देश के कई क्षेत्रो मे तेल मिलने की सभावना हो गई है, जहा सर्वेक्षण-कार्य किया जा रहा है । खम्भात मे, बड़ौदा के निकट, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पू० पजाब, प० बगाल इत्यादि क्षेत्रो मे तेल मिलने की आशा है । तृतीय योजना मे इस खोज-कार्य की ओर विशेष प्रयत्न किए जाने का विचार व्यक्त किया गया है । यदि हमारे ये यत्न सफल हुए तो हमारा तेल का आयात कम हो सकता है, किन्तु निकट भविष्य मे किसी उल्लेखनीय कमी की संभावना कम है ।

द्वितीय युद्ध और उसके उपरान्त काल मे ईरान भारतीय आयात का मुख्य केन्द्र रहा है । सन् १९४६-४७ मे हमारे आयात का ६०% तेल ईरान से आया था । तब से उसका भाग कम होता गया है और तेल की अधिकाधिक मात्रा बेहरीन द्वीप और साऊदी अरब से आती रही है । अब हमारी ५०% माग की पूर्ति ये दोनो देश मिलकर करते हैं । सयुक्त राष्ट्र, ब्रिटेन, सिंगापुर, सुमात्रा, फ्रास, इटली इत्यादि हमे तेल देने वाले अन्य देश हैं । हाल मे भारत ने रूस से तेल लेने का एक समझौता किया है ।

(५) परिवहन उपकरण—

लगभग ६० करोड रुपए के मूल्य की विविध गाडियाँ और तत्सम्बन्धी सामान प्रति वर्ष भारत आयात करता है । इनमें मुख्यत. रेल के इ जन और अन्य उपकरण, गाडियाँ, विमान, जहाज और नावें, साईकिलें और मोटर साईकिलें इनका आयात कुल का ७% है और उत्तरोत्तर बढता हुआ है ।

इसका कारण देश का आर्थिक विकास और परिवहन सुविधाओं की माग वृद्धि है। अब देश मे विविध यानो का उत्पादन आरम्भ हो गया है। रलों के इजन तथा सवारी और माल डिब्बों के लिए भारत स्वावलम्बन की स्थिति मे ही नहीं पहुँच गया, कुछ निर्यात भी करने की स्थिति मे है। मोटरों और साइकिलों का उत्पादन तेजी से बढाया जा रहा है। तृतीय योजना मे मोटर साईकिले बनाने का कार्यक्रम सम्मिलित किया गया है। जहाज निर्माण का दूसरा कारखाना भी खोलने का निश्चय हो चुका है। विमान भी देश मे बनने हैं, किन्तु आवश्यकता मे कम। अतएव अब हमे केवल विमानो और जहाजो का ही आयात करना है। इस भाति इसमे आगामी वर्षों मे महत्वपूर्ण कमी की सम्भावना है।

सयुक्त राष्ट्र, ब्रिटेन, प० जर्मनी नीदरलैंड, कनाडा, इटली, जापान इत्यादि देश हमे यह माल देते हैं।

(६) रुई एवं अन्य बुनाई के रेशे—

रुई के अतिरिक्त ऊन, रेशम, नकली रेशम, जूट और सन इत्यादि रेशे भारत विदेश से मँगवाता है। इनका भाग कुल आयात का ५% है। रुई का भाग प्रमुख है। बड़े रेशे की रुई हमे मंगानी पड़ती है। गत वर्षों मे ऐसी रुई का उत्पादन बढाने के यत्न किए गए हैं और हमारे आयात मे कुछ कमी भी हुई है, किन्तु विशेष कमी की शीघ्र सम्भावना नही प्रतीत होती।

रुई की भाँति भारत ऊनका आयातकर्त्ता और निर्यातकर्त्ता दोनो है। ऊनी उद्योग की उन्नति के साथ-साथ इसका आयात बढ सकता है। अब हम न्यूजीलंड और आस्ट्रेलिया से ऊन लेते हैं। जूट का उत्पादनबढता जा रहा है और हम स्वावलम्बी होते जा रहे हैं। जूट पाकिस्तान से आता है। रेशम सयुक्त राष्ट्र, जापान व चीन से तथा नक्ली रेशे जर्मनी बेलजियम, फिनलैंड व ब्रिटेन से आते हैं।

रसायनिक पदार्थ—

युद्ध से पूर्व लगभग ३ करोड रुपए के रसायनिक पदार्थ भारत विदेशों से मगाता था। युद्ध काल मे इनका उपयोग और आयात बढ गया और सन् १६४५-४६ मे दुगने मूल्य का आयात किया गया। युद्धोपरान्त और योजनाकाल मे औद्योगीकरण की प्रगति के साथ-साथ रसायनिक पदार्थों का आयात और भी बढता गया और अब लगभग ३६ करोड रुपए के मूल्य का यह आयात होता है, जो कुल आयात का ४% है। देश मे भारी रासायनिक उद्योग की उन्नति हो रही है और रसायनों का उत्पादन बढता जा रहा है। अतएव आयात मे धीरे-धीरे कमी होने लगी है। तो भी निकट भविष्य में विशेष कमी की कम सम्भावना है। देश को स्वावलम्बी होने में कुछ समय लगेगा।

रासायनिक पदार्थों मे मुख्यत: तेजाब, निखारने की वस्तुयें, क्षार, कास्टिक सोडा, गन्धक, जस्ते के मिश्रण इत्यादि सम्मिलित हैं। ये पदार्थ बहुधा ब्रिटेन, संयुक्त

हमारे आयात की अन्य वस्तुयें वस्त्र एवं सूत, फल व तरकारियाँ, औषधियाँ, रंग व रंगाई का अन्य सामान, वैज्ञानिक एवं अन्य-उपकरण, कागज, रबड़, लुग्दी, मछलियाँ इत्यादि हैं।

Q. 24. What important changes have taken place in our import trade in recent years?

हाल के वर्षों में हमारे आयात व्यापार में क्या-क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गए हैं?

गत वर्षों में हमारे आयात व्यापार में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए हैं। द्वितीय युद्ध से पूर्व हमारे आयात में उपभोक्ता पदार्थों का बाहुल्य रहता था। इन पदार्थों में सूती व ऊनी कपड़ा, चीनी, दियासलाई, जूते, साबुन, सीमेन्ट, घड़ियाँ, काँच का सामान, कागज एवं लेखन-सामिग्री, सिगरेट, छतरियाँ इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। लगभग ये सभी वस्तुएं अब देश में बनने लगी हैं, अतएव आयात वस्तुओं में इनका नगण्य स्थान है। वस्तुतः कई वस्तुएं (सूती, ऊनी कपड़ा, चीनी, जूते, सीमेन्ट) हम निर्यात् भी करने लगे हैं। उपभोक्ता पदार्थों के स्थान पर अपनी औद्योगीकरण की योजनाओं को सफल बनाने के लिये अब हमें पूँजीगत पदार्थों की अधिक आवश्यकता पड़ती है, अतएव ऐसे ही पदार्थ हमारे वर्तमान आयात का मुख्य भाग हैं। मशीनों का आयात गत वर्षों में तेजी से बढ़ता गया है और अब इसका भाग हमारे आयात पदार्थों में सर्वोपरि है। इस समय कुल आयात का लगभग एक-चौथाई विविध प्रकार की मशीनों का भाग है। बिजली की मशीनें, बुनाई की मशीनें, खनिज मशीनें, धातु-कर्मी मशीनें एवं जूता बनाने, धान कूटने, तेल पेरने, आटा पीसने, लकड़ी चीरने, कृषि-यन्त्र इत्यादि मशीनें बहुधा हम मगाते हैं।

वर्षों में विविध प्रकार की गाड़ियाँ भी हम आयात करते रहे हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में रेल-यान, बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में मोटरें एवं विमान तथा जहाज हम आयात करने लगे थे। इन परिवहन के साधनों की उन्नति के साथ-साथ उपर्युक्त विविध यानों का आयात देश में बढ़ता गया। अब भी यह आयात हमारे कुल आयात का लगभग ७ प्रतिशत है। अधिकृत रूप से यह बताया गया है कि देश में जहाज और विमानों को छोड़कर अन्य गाड़ियों के उत्पादन की स्थिति इतनी अच्छी हो गई है कि अब हमें बहुत दिन विदेशों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं। रेल चल-यान (इंजन, सवारी डिब्बे और माल डिब्बे) के कारखानों से इतने यान बनने लगे हैं कि हम स्वावलम्बी ही नहीं हो गये हैं वरन् कुछ वर्षों में निर्यात् करने की स्थिति में पहुँच जायेंगे। मोटर गाड़ियों का आयात सन्

१९५७ से बन्द कर दिया है और देश का उत्पादन बढाने के यत्न किये जा रहे है। अब हम साइकिलें भी विदेश से नही मँगाते। कुछ साइकिलें हाल मे निर्यात भी की गई है।

देश-विभाजन के कारण रुई एव जूट की स्थिति देश मे बहुत बिगड गई है। जूट के उत्पादन का एक बडा क्षेत्र और बडे रेशे की रुई के उत्पादन का सारा क्षेत्र पाकिस्तान मे चला गया। परिणाम यह हुआ कि जिस जूट के बचे हुए भाग का हम निर्यात किया करते थे, अब हमे उसका आयात करना पडता है, यद्यपि उत्पादन बढा कर इस सम्बन्ध मे स्वावलम्बी होने का हम पूरा यत्न कर रहे हैं। बडे रेशे की रुई का उत्पादन भी देश मे बढाया जा रहा है, किन्तु तो भी अभी वर्षो तक हमे विदेशो पर निर्भर रहना है।

जब तक ब्रह्मा हमारे साथ रहा, हमे खनिज तेल के आयात की कोई आवश्यकता नही थी। सन् १९३७ मे खनिज तेल का व्यापार विदेशी व्यापार कहा जाने लगा। कुछ ही दिन मे ब्रह्मा जापान के प्रभुत्व मे चला गया और युद्ध के वर्षो मे हम अपनी बढती हुई खनिज तेल की माँग की पूर्ति ईरान से करनी पडी। गत वर्षों म मोटर और विमान के विकास और औद्योगीकरण के कारण खनिज तेल का आयात बढता चला गया है। हाल मे देश के कई क्षेत्रो मे तेल मिलने की सम्भावनायें बताई गई हैं तो भी निकट भविष्य मे इसका देश के आयात मे विशेष महत्व है।

द्वितीय युद्ध से पूर्व देशी उपभोक्ता के लिये कमी होते हुए भी कुछ खाद्यान्न का हम निर्यात् किया करते थे। यह वस्तुत ब्रिटेन की कमी पूर्ति के लिए किया जाता था। युद्ध-काल मे खाद्यान्न का उत्पादन देश मे कम हो गया और उसकी माँग बढ गई। अतएव देश आयात करने लगा। देश-विभाजन के उपरान्त स्थिति और भी बिगड गई और आयात की मात्रा बढती गई। दो योजनाओ क प्रयत्नो के उपरान्त आज भी लाखो टन अन्न विदेश से मँगाना पडता है।

पहले की भाँति हमारे आयात मे ब्रिटेन का अब भी प्रमुख भाग है। देश का औद्योगिक ढाँचा सदियो के निकट सम्बन्ध के कारण ब्रिटेन से बँध गया है। अतएव आयात की जाने वाली मशीनो और तत्सम्बन्धी यन्त्र-उपकरणो का आयात बहुधा ब्रिटेन से ही किया जाता है। डालर सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी हमे इसके लिये विवश करती हैं।

इस भाँति हमारे आयात व्यापार की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

(१) पूँजीगत पदार्थों मुख्यत. मशीनो का स्थान सर्वोपरि है।

(२) परम्परागत आयात वस्तुओ अर्थात् गाडियो, खनिज तेल, रसायनिक पदार्थ का आयात भी गत वर्षों मे बढता गया है।

(३) बड़े रेशे की रुई और जूट का आयात भी स्वतन्त्र भारत के व्यापार की एक विशेषता है।

(४) खाद्यान्न का स्थान भी हमारे आयात में महत्वपूर्ण है, यद्यपि इसमें भारी उतार-चढ़ाव होते रहे हैं।

(५) आज भी ब्रिटेन हमारा सबसे बड़ा उपलब्ध-कर्त्ता है। भारत ब्रिटेन का चौथा बड़ा ग्राहक है।

अध्याय ८

निर्यात-व्यापार

(Export Trade)

Q. 25. What are the principal commodities which India exports ? Examine their present position and future prospects.

(Agra, Supp. 1951)

भारत की मुख्य निर्यात वस्तुएँ कौन-कौन हैं ? उनकी वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डालिए।

भारत की निर्यात वस्तुओं में मुख्य चाय (२२%), जूट का माल (१७%), सूती वस्त्र (६%), रुई (४%), कच्ची व रद्दी खनिज लोहा (२%), चमड़ा व चमड़े का माल (३%) काजू (३%), तम्बाकू (निर्मित व अनिर्मित ३%), ऊन व ऊनी माल (२½%), तथा चीनी (१%) इत्यादि हैं, जो कुल निर्यात के लगभग ७०% के लिए उत्तरदायी हैं।

(१) चाय—

चाय हमारी परम्परागत निर्यात वस्तुओं में प्रमुख है और सब वस्तुओं से अधिक विदेशी विनिमय अर्जित करती है। भारत चाय के उत्पादकों में सर्वोपरि है। भारत विश्व के उत्पादन का ५०% से अधिक चाय उत्पन्न करता है। अपनी चाय के उत्पादन का दो-तिहाई हम निर्यात करते हैं।

इस समय चाय का भाग कुल निर्यात में २२% है। गत वर्षों में इसका निर्यात बढ़ाने के यत्न किए गए हैं, जो सफल हुए हैं। सन् १९४८–४९ में चाय के निर्यात का मूल्य केवल ६६ करोड़ रुपए था, सन् १९५६ में यह बढ़कर १४३ करोड़ रुपए हो गया। तदुपरान्त विदेशी प्रतियोगिता के कारण इसमें कुछ कमी आ गई और सन् १९५७ में केवल १२३ करोड़ रुपए रह गया, किन्तु सन् १९५८ में इसमें वृद्धि हुई और इसका मूल्य १३७ करोड़ रुपए हो गया। द्वितीय योजना काल में हमारा लक्ष्य १३३ करोड़ रुपए रखा गया था और सन् १९५८ तक उस सीमा से हमारा निर्यात आगे बढ़ गया। इस प्रकार के यत्न करने की आवश्यकता है कि हमारा चाय का निर्यात इसी सीमा पर न रुक जाए, वरन् उत्तरोत्तर और ऊँचा चढ़ता चला जाए। इसके लिए हमें परम्परागत बाजारों में निर्यात बढ़ाना चाहिए और नए बाजारों की खोज करनी चाहिए। दोनों ही क्षेत्रों में हमें प्रचार और सम्पर्क बढ़ाने के यत्न करने चाहिएँ। अपने माल के गुण-सुधार की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

भारतीय चाय के मुख्य ग्राहक ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र, कनाडा, आयरलैंड, मिस्र, तुर्की, ईरान, आस्ट्रेलिया, रूस इत्यादि हैं।

(२) जूट का माल—

चाय की भांति जूट का माल (बोरे और टाट) हमारी परम्परागत निर्यात वस्तुओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गत वर्षों में डालर की कठिनाई के कारण इसका महत्व और भी बढ़ गया है, क्योंकि इसका एक बड़ा भाग संयुक्त राष्ट्र, कनाडा, अर्जेनटाइना इत्यादि डालर राष्ट्रों को निर्यात किया जाता है।

जूट का माल इस समय कुल निर्यात का १७% है। सन् १९५६ और सन् १९५७ में से प्रत्येक वर्ष इसका मूल्य ११२ करोड़ रुपए था, किन्तु सन् १९५८ में केवल १०१ करोड़ रुपए रह गया। इसका कारण विदेशी प्रतियोगिता है। जूट के निर्यात के सम्बन्ध में दो प्रकार की प्रतियोगिता होती है। एक ओर दूसरे देशों (पाकिस्तान, संयुक्त राष्ट्र, प० जर्मनी, जापान इत्यादि) से प्रतियोगिता होती है और दूसरी ओर दूसरी स्थानापन्न वस्तुओं (कागज और सूत के बोरे) से। अपनी जूट मिलों के आधुनिकीकरण, कच्चे माल की उत्पादन वृद्धि, विदेशों में प्रचार इत्यादि यत्नों द्वारा हम इस स्थिति में सुधार कर सकते हैं।

द्वितीय योजना में हमने ९ लाख टन (१२२ करोड़ रुपए के मूल्य का) जूट का माल निर्यात करने का लक्ष्य अपनाया था। निर्यात प्रवर्तन समिति सन् १९५७ ने १० लाख टन के लक्ष्य का सुझाव दिया था। यह लक्ष्य हमारी द्वितीय युद्ध पूर्व की स्थिति के लगभग समान था, जब हम लगभग ११ लाख टन जूट का माल निर्यात करते थे। सन् १९५६ में हमारा निर्यात लगभग द्वितीय योजना के लक्ष्य के निकट था, किन्तु कालान्तर में यह गिर कर ८ लाख टन रह गया। संयुक्तराष्ट्र, अर्जेनटाइन, कनाडा, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड इत्यादि जूट के माल के हमारे प्रमुख ग्राहक हैं। गेहूँ, चावल अथवा अन्य खाद्यान्न उत्पादन करने वाले देशों में इसकी मांग अधिक है।

(३) सूती माल—

भारत का विश्व के सूती वस्त्र-निर्माताओं और निर्यातकों में महत्वपूर्ण स्थान है। उत्पादकों में संयुक्त राष्ट्र के उपरान्त और निर्यातकों में जापान के उपरान्त भारत का स्थान है। यह स्थिति भारत ने युद्धोत्तर काल के वर्षों में ही प्राप्त की है। द्वितीय युद्ध से पूर्व तक भारत एक बड़ी मात्रा में सूती वस्त्रों का आयात करता था। स्वतन्त्रता के उपरान्त सूती वस्त्रों का आयात बन्द कर दिया गया और उनका निर्यात बढ़ाने के सक्रिय यत्न किए जाने लगे। फलस्वरूप सन् १९५०–५१ में यह निर्यात अपनी चरम सीमा (१८७ करोड़ गज) को पहुँच गया। तदुपरान्त यह स्थिति न रह सकी, तो भी सन् १९५१–५२ की भारी गिरावट (४२ करोड़ गज)

खालो का निर्यात कम और चमडे एव चमडे के माल का निर्यात बढता गया। भविष्य मे भी हमारी यही नीति जारी रहेगी। इस समय वार्षिक निर्यात का मूल्य लगभग २५ करोड रुपए है, जो कुल निर्यात का लगभग ५% है।

चमडे के प्रमुख ग्राहक ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रास, सयुक्त राष्ट्र और बेलजियम इत्यादि तथा चमडे के माल (मुख्यत. जूते) के लंका, थाईलैंड, ब्रह्मा, रूस, प० जर्मनी, बुलगेरिया, यूगोस्लेविया, पोलैंड इत्यादि हैं।

(६) रुई—

भारतीय निर्यात की परम्परागत वस्तुओ मे से रुई भी एक है। द्वितीय युद्ध से पूर्व तक रुई हमारी निर्यात वस्तुओं मे दूसरे स्थान पर थी और कुल के लगभग १५% के बराबर थी। युद्ध काल मे रुई का उत्पादन कम हो गया और देश में खपत बढ गई। अतएव इसका निर्यात भी अत्यन्त कम हो गया। युद्ध समाप्त होने पर रुई का उत्पादन बढाने के यत्न किए गए और निर्यात मे कुछ सुधार होने लगा, किन्तु देश-विभाजन के कारण फिर इसे भारी धक्का लगा। तब से फसल की स्थिति और देश के उपभोग को देखकर निर्यात-मात्रा निर्धारित की जाती है।

इस समय रुई के निर्यात से हमे लगभग २० करोड़ रुपए का विदेशी विनिमय मिलता है। इसका भाग कुल निर्यात का ४% है। दो प्रकार की रुई भारत निर्यात करता है। वार्षिक निर्यात मे लगभग ४०,००० टन कच्ची रुई और लगभग १० लाख हण्डरवेट रद्दी रुई (सूती मिलो से निकली हुई) सम्मिलित रहती है।

जापान रुई का सबसे बडा ग्राहक है। हाँगकाग, ब्रिटेन, सयुक्त राष्ट्र, आस्ट्रेलिया और जर्मनी अन्य ग्राहक हैं।

(७) ऊन और ऊनी माल—

भारत मे अपनी आवश्यकता से अधिक ऊन उत्पन्न होती है। यह ऊन बढिया और महीन ऊनी कपड़ा बुनने के लिए उपयुक्त नहीं समझी जाती। अतएव इसका एक बडा भाग विदेश भेज दिया जाता है, जहाँ इसे मोटे कपडे, मोटे कम्बल, कालीन, गद्दियाँ इत्यादि बनाने के काम मे लिया जाता है। कुछ ऊनी कालीन कम्बल, बिछौने और चटाइयाँ भी भारत निर्यात करता है।

ऊन, बाल और ऊनी माल के सम्मिलित निर्यात का वार्षिक मूल्य लगभग १५ करोड रुपए है, जो कुल का लगभग ३ प्रतिशत होता है। हाल मे कई प्रतिनिधि मण्डल विदेश भेज कर इसका निर्यात बढाने के विशेष यत्न किए गए हैं। ऐसे यत्न भविष्य मे भी किए जायेंगे। अतएव इसके निर्यात मे कुछ सुधार की सभावना है।

ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र, रूस, फ्रास, बेलजियम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, सिंगापुर इस माल के हमारे मुख्य ग्राहक हैं।

Q. 26. Which countries are the best customers of Indian goods? What difficulties has India to face in trading with them? How can these difficulties be removed? (Lucknow, 1952; Agra, 1960)

इस समय संसार के कौन-से देश भारत के सबसे श्रेष्ठ ग्राहक हैं? उनसे व्यापार करने में भारत को क्या कठिनाइयाँ हैं। ये कठिनाइयाँ कैसे दूर की जा सकती हैं?

विश्व का ऐसा कोई-विरला ही देश होगा जो भारत से थोड़ा-बहुत माल न लेता हो। सभी महाद्वीपो के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध है। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित विदेशी व्यापार पत्रिका के मासिक परिशिष्ट मे उल्लिखित ७४ देशो मे से ६७ देश ऐसे हैं जिन्होंने कुछ न कुछ माल भारत से लिया। इनमे से हमारे माल के ग्राहक ब्रिटेन (२६ प्रतिशत), सयुक्त राष्ट्र (१६ प्रतिशत), जापान (४ ५ प्रतिशत), रूस, (४ प्रतिशत), ग्रास्ट्रेलिया (३·७ प्रतिशत), लका (३ ५ प्रतिशत), प० जर्मनी (२·६ प्रतिशत), कनाडा (२ ५ प्रतिशत), सिंगापुर, (१ ८ प्रतिशत), मिस्र (१ ५ प्रतिशत), ब्रह्मा (१·३ प्रतिशत), फ्रास (१ २ प्रतिशत), सूडान (१·२ प्रतिशत), नीदरलैंड (१·२ प्रतिशत), पाकिस्तान (१ २ प्रतिशत) तथा इटली (१ ० प्रतिशत) इत्यादि हैं, जो हमारे कुल निर्यात के ७५ प्रतिशत के लिए उत्तरदायी हैं, जैसा कि नीचे के ग्राकड़े प्रदर्शित करते हैं:

भारतीय माल के प्रमुख ग्राहक

(मूल्य करोड़ रुपए)

	१९५८		१९५८		१९५९	
	मूल्य	%	मूल्य	%	मूल्य	%
१ ब्रिटेन	१६१ ०२	२५ ०	१६६ २९	२८ ७	१७२ १७	२७ ६
२ सयुक्त राष्ट्र	१३१ ८७	२०.४	९३ ०९	१६ १	९५ ४१	१५ ३
३ जापान	२७ ३४	४ ३	२५ ८६	४ ५	३४ ४४	५·५
४ रूस	१७·५३	२ ७	२३ ३२	४ ०	३० ३६	५ ०
५ ग्रास्ट्रेलिया	२४ ७३	३·८	२१·४३	३·७	१९·१६	३·१
६ लका	१७ ०३	२ ६	२० १०	३ ५	२२ २३	३·६
७ प० जर्मनी	१६ २२	२ ५	१४ ८३	२ ६	१९ ६१	३ १
८ कनाडा	१३ ९२	२ २	१४ ५४	२ ५	१५ १५	२ ४
९ सिंगापुर	९ ०८	१ ४	१० ४४	१ ८	७ ६७	१ २
१० मिस्र	११ ३४	१ ८	८ ६८	१ ५	८·८८	१ ४
११ ब्रह्मा	१३ ३०	२ १	७·५४	१ ३	१२ ६८	२ ०
१२. फ्रास	१० २१	१ ६	७·२१	१ २	८·२७	१ ३
१३ सूडान	९ ७७	१·५	७ १६	१ २	१४ ६२	२ ३
१४. पाकिस्तान	६ ७७	१·१	७.१६	१ २	६·३२	१·०
१५ नीदरलैंड	८ ४५	१·३	६ ८०	१ २	९ ०२	१ ४
१६ इटली	७ ३१	१ १	५·५३	१ ०	५·७०	१ ०

इन दोषों के साथ व्यापार करने मे हमारे निर्यातकों को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। इन कठिनाइयो की ओर हमारे विदेशी आयातकों ने समय-समय पर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। हमारे यहा से कई व्यापारिक शिष्टमण्डल विदेश भेजे गए हैं, जिनके द्वारा हमे उन सब बाधाओं और कठिनाइयो की जानकारी हुई है जो हमारे निर्यात प्रवर्तन मे रुकावटें डालती रहती हैं। इनमे से कुछ उल्लेखनीय बाधाएँ निम्नांकित हैं·

(१) उच्च मूल्य स्तर—

बहुधा हमारी कुछ निर्यात वस्तुओं का मूल्य अन्य निर्यातकों की अपेक्षा विदेशी बाजारो मे ऊँचा पडता है, जिससे उसकी खपत मे कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। गत वर्षों में चाय, जूट और सूती वस्त्रो के निर्यात मे कमी आने का मुख्य कारण ऊँचा मूल्य स्तर ही समझना चाहिए। ऊँचे मूल्य स्तर के कई कारण हैं· प्राचीन मशीनें, अयोग्य कारीगर, ऊँचे उत्पादन एव निर्यात कर, कच्चे माल का ऊँचा मूल्य इत्यादि। उद्योगों के अभिनवीकरण द्वारा और कर कम करके हमारी प्रतियोगी शक्ति बढ सकती है।

(२) विदेशी प्रतियोगिता—

अनेक बाजारो मे हमारे निर्यात बढाने मे विदेशी प्रतियोगिता भारी बाधा है। दूसरे निर्यातक अनेक युक्तियों द्वारा अपनी प्रतियोगी शक्ति बढा रहे हैं, किन्तु हम ऐसा करने मे असमर्थ हैं। सूती माल के निर्यात मे जापान व चीन से; जूट के माल मे पाकिस्तान, सयुक्त राष्ट्र व जर्मनी से; चाय के बाजारो मे लका, इडोनेशिया, पाकिस्तान व कीनिया से; खनिज लोहक (manganese) मे रूस व ब्राजील मे; काली मिर्च मे इडोनेशिया व सरावक से हमारी प्रतियोगिता होती है, अपने उद्योगों का अभिनवीकरण करके, माल के गुण सुधार एव प्रचार द्वारा हमे इस प्रतियोगिता का बचाव करना चाहिए। जूट के क्षेत्र मे विदेशी प्रतियोगिता के अतिरिक्त दूसरी स्थानापन्न वस्तुओं की प्रतियोगिता भी भारी बाधा है। टाट के बोरों के स्थान पर अनेक देशो मे कागज और सूत के बोरे प्रयोग किए जाने लगे हैं। ऐसे क्षेत्रों मे हमे इस बात के प्रचार की आवश्यकता है कि टाट के बोरे बार-बार काम मे लाए जा सकते हैं; उनमे छीजन भी कम होती है। अतएव वे अन्य बोरो से गेहूँ, चावल, चीनी इत्यादि भरने के लिए सस्ते पडते हैं।

(३) माल भेजने में देरी—

बहुधा हमारे निर्यातक आदेशानुसार शीघ्र माल नही भेज पाते अथवा समय से उसकी सुपुर्दगी (delivery) नही दे पाते। इससे आयातकों को भारी हानि होती है। उनके ग्राहकों की माग-पूर्ति समय पर नही होती। अतएव उनकी साख को धक्का लगता है। कभी-कभी निर्यातकों की उपेक्षा से देरी हो जाती है, किन्तु

बहुधा इस देरी का कारण हमारी सरकार की अस्थिर निर्यात नीति है। निर्यात-नीति के समय-समय पर शीघ्रता से बदलने के कारण हमारे विदेशी ग्राहक हमारे ऊपर भरोसा नही करते, विशेषतः निर्धारित मात्रा (quota) के अन्तर्गत भेजे जाने वाली वस्तुओ के सबध में ऐसी कठिनाई उपस्थित होती है। इस कठिनाई को दूर करने का एक मात्र उपाय हमारी नीति की स्थिरता है। भारत सरकार की निर्यात नीति मे तारतम्य और स्थिरता आनी चाहिए। जिन वस्तुओ के निर्यात निश्चित मात्रा (quota) से सीमा बद्ध होते हैं उनकी घोषणा सदैव समय से करनी चाहिए। इस सबध मे कोई ऐसी निम्नतम सीमा बाँध देनी चाहिए जिससे नीचे निर्यात-मात्रा नही जाने दी जाएगी।

(४) गुण एवं प्रतिमान—

हमारा निर्यातक एव व्यापारी अपने माल के गुण एव प्रतिमान के सम्बन्ध मे भारी उपेक्षा दिखाता है। एक बार साख बनने पर उसे शीघ्र धनी होने का लालच गुण गिराने के लिए लालायित करता है। इसी भाँति वह अपने माल का उचित प्रतिमानीकरण भी नही करता। ऐसी स्थिति मे कोई भी आयातक हमारे माल पर भरोसा नही कर सकता। अति प्राचीन काल मे अडी के तेल का हमारा बढ़ता हुआ विश्वव्यापी व्यापार गुण-गिरावट के कारण समाप्त हो गया था। रूस के साथ जूतो के व्यापार को भी गुण-गिरावट के कारण भारी धक्का लगा। हमारी काली मिर्च का निर्यात भी इसी कारण कम हो गया है। आज भीषण प्रतियोगिता के युग मे माल का गुण-नियन्त्रण एव प्रतिमानीकरण अत्यन्त आवश्यक है। जो माल विदेश भेजा जाए उसकी पूरी-पूरी देख-भाल कर लेनी चाहिए। कुछ वस्तुओ के गुण-नियन्त्रण एव प्रतिमानीकरण की ओर भारत सरकार जागरूक है, किन्तु हमे वस्तुतः सभी वस्तुओं के गुण एव प्रतिमानीकरण पर कड़ी निगाह रखने की आवश्यकता है। जापान को हमारा कोयला गुण के निम्न कोटि का होने के कारण ही कम जाने लगा है, किन्तु वहां धुले हुए कोयले की भारी माँग है। सूती वस्त्रो का निर्यात भी गुण के कारण ही कम होता जा रहा है। परम्परागत निर्यात-वस्तुओं की ओर हमे विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

(५) कड़ी कार्य-विधि—

कानूनो और नियमो की भरमार के कारण भी हमारे निर्यात मे बाधा उपस्थित होती है। खनिज लोहक के निर्यात मे ऐसी ही अनेक बाधाएँ देखने मे आती है। रेल-भाड़ों, स्वामित्व अधिकारो (Royalty), बिक्री कर तथा सरकारी स्वीकृति की शर्तों मे इतनी अधिक वृद्धि हो गई है। कि विदेशी बाजारो मे निर्यात की स्थिति रोज-रोज गिरती जा रही है। राजकीय व्यापार निगम द्वारा किए जाने वाले व्यापार के सम्बन्ध मे निगम के विरुद्ध इसी प्रकार की अनेक शिकायतें आई हैं। आवश्यकता इस बात की है कि निर्यात क मार्ग से विधि-विधान सम्बन्धी बाधाओं

को हटाया जाए और निर्यात को सुलभ एवं सुविधाजनक बनाया जाए और सक्रिय प्रोत्साहन दिया जाए।

(६) प्रचार—

उपयुक्त प्रचार के अभाव में भी हमारे निर्यात की उतनी वृद्धि नहीं हो पाती जितनी वस्तुतः हो सकती है। नई वस्तुओं के व्यापार बढ़ाने के लिए ही प्रचार की आवश्यकता नहीं है, परम्परागत वस्तुओं का निर्यात उचित स्तर पर बनाए रखने के लिए भी हमें अनवरत प्रचार की आवश्यकता है। प्रचार द्वारा ब्रिटेन में चाय की खपत बढ़ाई जा सकती है। ब्रिटेन, जो हमारी चाय का सबसे बड़ा बाजार है, हाल में पूर्वी अफ्रीका से अधिक चाय लेने लगा है और भारत से कम। संयुक्त राष्ट्र के लोगों को प्रचार द्वारा हम अधिक चाय उपभोग करने का प्रोत्साहन दे सकते हैं। जूट के माल की प्रतियोगिता का बचाव भी प्रचार द्वारा ही सम्भव है। कुछ दिन से अनेक देश सूती और कागज के बोरों का प्रयोग करने लगे हैं और हमारे जूट के माल का निर्यात गिरता जा रहा है।

(७) विदेशी मांग एवं बाजारों की जानकारी का अभाव—

गत वर्षों में हमारे व्यापार की मात्रा ही नहीं बढ़ गई, उसका क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत हो गया है। अपने नए उत्पादनों की खपत के लिए हमें नए बाजारों की भी आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में व्यापारी वर्ग और सरकार दोनों के सहयोग एवं सम्मिलित प्रयत्न आवश्यक हैं। निर्यातकों को चाहिये कि निर्यात-योजना के निमित्त योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करें। भारत सरकार को चाहिए कि अपने राजनैतिक दूतावासों एवं वाणिज्य दूतावासों में कर्मचारियों की संख्या बढ़ाएं और इस भाँति सम्पर्क बढ़ाने का यत्न करें।

(८) सहायक साधनों का अभाव—

हमारे निर्यात व्यापार के मार्ग में सहायक सुविधाओं का अभाव भी बाधक है। बढ़ते हुए निर्यात के लिए हमें उपयुक्त जहाजी स्थान, महाजनी एवं साख सुविधायें, बीमा व्यवस्था इत्यादि की अत्यन्त आवश्यकता है। इन सुविधाओं के भारतीयकरण और प्रसार से हमारा निर्यात सहज बढ़ सकता है और हमारा व्यापारिक घाटा कम हो सकता है।

(९) परिवहन कठिनाइयाँ—

परिवहन कठिनाइयाँ और बन्दरगाहों पर स्थान का अभाव भी हमारी भारी और बड़े आकार की वस्तुओं के निर्यात वर्द्धन में बाधक है। खनिज लोहा और खनिज लोहक (Manganese) के व्यापार पर इनका अति विकृत प्रभाव पड़ता है।

उपभोक्ताओ के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करके, उन्हे उनकी रुचि के अनुकूल माल देकर, नए बाजारो की खोज करके, विदेशो में होने वाले मेलो और प्रदर्शिनियो मे अधिक भाग लेकर, माल के संवेष्टन एवं उसके रंग-रूप पर उचित ध्यान देकर भी हम अपने निर्यात बढाने मे सफल हो सकते हैं। निर्यात संवर्द्धन की अन्य उक्तियो एव सुझावो का पूर्ण विवरण प्रश्न १८ मे दिया जा चुका है।

Q. 27 Point out the major changes that have occurred in our export trade since 1918 and explain the causes of these changes. (Agra, 1953)

सन् १६१८ से अब तक हमारे निर्यात् व्यापार मे जो बड़े-बड़े परिवर्तन हो गए हैं उनका उल्लेख कीजिए और इन परिवर्तनों के कारण भी बतलाइए।

अति प्राचीन काल से भारत एक उद्योग प्रधान देश था और अपने औद्योगिक पदार्थों के निर्यात् के लिए प्रसिद्ध था। अँग्रेजी शासन काल मे यह स्थिति बदल गई और वह एक कृषि प्रधान देश माना जाने लगा। अब वह रुई, जूट, तिलहन इत्यादि औद्योगिक कच्चे पदार्थों का उत्पादन क्षेत्र बन गया। ब्रिटेन के उद्योगों के लिए इन वस्तुओ का अमित मात्रा मे निर्यात् होने लगा। प्रथम युद्ध के उपरान्त तक स्थिति ऐसी ही बनी रही। प्रथम युद्ध के उपरान्त परिस्थितियाँ कुछ बदली। एक ओर देश के औद्योगीकरण की माग की जाने लगी और दूसरी ओर देश मे राजनीतिक जागृति के कारण स्वदेशी की भावना जोर पकडती गई। अतएव औद्योगिक-रक्षण की नीति अपनाई गई। सूती वस्त्र, लोहा-इस्पात, कागज, दियासलाई, चीनी इत्यादि उद्योग पनपने लगे। इन परिवर्तनो का प्रभाव व्यापार पर भी पडना स्वाभाविक था। युद्ध के उपरान्त के वर्षो मे प्रथम बार सूती वस्त्रो का नि ति होने लगा, यद्यपि अभी हम बडी मात्रा मे सूती वस्त्र आयात करते थे। तो भी निर्यात् के स्वरूप परिवर्तन का यह प्रथम सूचक चिन्ह था। द्वितीय युद्ध काल मे हमारे जमे हुए उद्योगों को विशेष उन्नति करने का अवसर मिला। रुई, जूट, तिलहन, खालें इत्यादि औद्योगिक कच्चे पदार्थ अभी तक निर्यात् के निमित्त उगाए जाते थे। अब इनकी देश मे खपत बढ गई और निर्यात् कम होता गया। इस प्रवृत्ति के साथ ही साथ एक विपरीत प्रवृत्ति और दिखाई दी, जो पहली प्रवृत्ति का अवश्यम्भावी परिणाम थी। रुई के स्थान पर सूती वस्त्र, जूट के स्थान पर जूट का माल, तिलहन के स्थान पर वनस्पति तेल एवं खालो के स्थान पर चमडे और चमडे के बने पदार्थों का अधिकाधिक निर्यात होने लगा। सन् १६२४-२५ मे कच्चे पदार्थों का कुल निर्यात् मे प्रतिशत भाग ५०% था, जो

द्वारा निर्यात प्रवर्तन की नीति अपनाई। तब से निर्यात प्रवर्तन के भरसक यत्न किये जाते हैं। सन् १६५६ से राजकीय व्यापार निगम कुछ वस्तुओं का निर्यात् करने लगी है।

कुछ ही दिनों में भारत एक उद्योग प्रधान देशों में गिना जाने लगेगा और रेल के इंजन व डिब्बे, मोटरें, बाईसिकिलें एवं विविध इंजीनियरी पदार्थ निर्यात् करने लगेगा। इस भांति गत वर्षों में हमारे निर्यात का स्वरूप एवं उसकी दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए हैं।

अध्याय ६

व्यापार की दिशा

(Direction of Trade)

Q. 28. Describe the outstanding features of Indo-Pakistan trade since 1947 to the present day. What are the possibilities of its development in future ? (Lucknow, 1954)

सन् १९४७ से अब तक के भारतवर्ष के पाकिस्तान से व्यापार की मुख्य-मुख्य बातें वर्णन कीजिए। भविष्य में इसकी उन्नति की क्या सम्भावना है ?

राजनीतिक भेदभाव किसी देश की भौगोलिक परिस्थितियों एवं आर्थिक संगठन को नहीं बदल सकता। भारत और पाकिस्तान का व्यापार इस तथ्य के समर्थन का एक ज्वलंत उदाहरण है। अगस्त सन् १९४७ से पूर्व भारत और पाकिस्तान एक ही देश थे। विभाजन के कारण न तो उनकी भौगोलिक परिस्थितियाँ ही बदलीं और न उनके आर्थिक संगठन ही स्वतः पूर्ण हो सके। एक ही अर्थ व्यवस्था और संगठन के टुकड़े होने से उनके अनुपूरक स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आया। अन्न, रुई और जूट भारत को आयात करने पड़ते हैं और पाकिस्तान के पास इन वस्तुओं का बाहुल्य है। पाकिस्तान के पास कोयला, चीनी, वस्त्र, वनस्पति तेल इत्यादि का अभाव है और भारत इनका निर्यात करता है। इस भाँति दोनों देशों की अर्थ व्यवस्था एक दूसरे की अनुपूरक है। अतएव व्यापारिक सहयोग द्वारा दोनों देशों को अमित लाभ हो सकता है, किन्तु दोनों देशों की राजनीतिक तनातनी और भेदभाव के कारण व्यापारिक विकास में भारी बाधायें उपस्थित होती रहती हैं और व्यापार का स्वतंत्र विकास नहीं हो पाता। फलतः दोनों देशों को हानि होती है।

भारत-पाकिस्तान के बीच सन् १९४८ से सन् १९५३ तक प्रति वर्ष एक व्यापारिक समझौता हुआ, किन्तु पारस्परिक तनातनी और द्वेषभाव के कारण कोई भी समझौता पूर्णतः कार्यान्वित न हो सका। ये समझौते दोनों देशों की अर्थ व्यवस्था के अनुपूरक स्वभाव की ओर संकेत करते हैं और इस तथ्य का समर्थन करते हैं कि दोनों देश एक-दूसरे से स्थायी रूप से व्यापारिक सम्बन्ध विच्छेद करके जीवित नहीं रह सकते। यही कारण है कि एक समझौते के कार्यान्वित न होने पर परिस्थितियों ने उन्हें अन्य समझौते करने को बाध्य किया।

व्यापारिक समझौतों के कार्यान्वित न होने के कारण दोनों देशों के व्यापार में सन् १९४८ में उत्तरोत्तर कमी आती चली गई। सन् १९४८-४९ में भारत-पाकिस्तान के व्यापार का मूल्य १८४ करोड़ रुपए था, जो सन् १९५३-५४ में २७ करोड़ रुपए और सन् १९५८ में ९ करोड़ रुपए रह गया। सामान्यतः सन् १९५३-५४ तक व्यापार गिरता चला गया, किन्तु सन् १९५५ के समझौते के अन्तर्गत दोनों देश कुछ ऐसी बातों पर सहमत हुए जिनके द्वारा व्यापार में कुछ सुधार होने लगा। सन् १९५९ से राजनीतिक वातावरण में कुछ सुधार हुआ है, जिसका स्वस्थ प्रभाव व्यापार पर भी दृष्टिगोचर होने लगा है। यदि दोनों देशों में राजनीतिक सद्भाव बना रहा तो व्यापार में उन्नति हो सकती है।

राजनीतिक तनातनी के कारण व्यापारिक विकास में बाधा उपस्थित करने वाली कुछ घटनाएँ निम्नांकित हैं: (१) व्यापारिक समझौतों के अनुसार दोनों देश कुछ वस्तुओं की निश्चित मात्रा के आदान-प्रदान के लिए सहमत हुए, किन्तु एक देश के निश्चित मात्रा में माल न देने पर दूसरे देश ने भी ऐसी ही नीति अपनाई। उदाहरणार्थ, सन् १९४८ के समझौते के अन्तर्गत पाकिस्तान ने निश्चित मात्रा में वस्तुएँ न भेजीं, जूट के निर्यात पर कर लगा दिए, उसका भेजना भी बन्द कर दिया इसी भाँति पाकिस्तान ने भारतीय सूती कपड़े के आयात पर कर लगा दिए और उसका लेना बन्द कर दिया। इस नीति की भारत में भी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था सन् १९४९ के समझौते के उपरान्त पाकिस्तान ने भारतीय माल की अपेक्षा अन्य देशों के माल को महत्व दिया। भारत के मोटे कपड़े पर १५ से १८ प्रतिशत तक आयात कर लगाए गए और महीन कपड़े पर ३० से ३६ प्रतिशत तक कर बढ़ा दिए गए। अन्य देशों से आने वाले कपड़े से कर कम किए गए और उसमें प्रतिबन्ध भी हटाए गए। भारतीय कपड़े के आयात-लाइसेन्स देने भी बन्द कर दिए। (३) सन् १९४९ में भारत ने ब्रिटेन एवं अन्य देशों का अनुसरण करते हुए अपने रुपए का अवमूल्यन किया; पाकिस्तान ने ऐसा नहीं किया। इससे दोनों देशों के व्यापारिक विकास में भारी बाधा उपस्थित हुई। भारत को ऊँचे मूल्य पर पाकिस्तान से रुई, जूट और खाद्यान्न लेने पड़े। (४) पाकिस्तान द्वारा भारत को जूट देना बन्द कर देने पर भारत ने उसे कोयला देना बन्द कर दिया और कुछ समय के लिए दोनों देशों के बीच व्यापार बन्द हो गया।

इसी भाँति की कठिनाइयाँ अन्य समझौतों के सम्बन्ध में भी आईं। अन्त में सन् १९५५ के समझौते द्वारा दोनों देश कुछ वस्तुओं के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियमों एवं बन्धनों को पूर्णतः हटाने पर सहमत हुए। पश्चिमी बंगाल, आसाम, बिहार और त्रिपुरा तथा पूर्वी पाकिस्तान के सीमान्त निवासियों की दैनिक सुविधाओं के लिए उन्हें फल, तरकारियाँ, दूध, मुर्गी, मसाले, मिट्टी के बर्तन, मिट्टी का तेल, साबुन इत्यादि वस्तुओं के परस्पर आदान-प्रदान की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई। कुछ अन्य

वस्तुओं के लेन-देन के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक लाइसेन्स देने पर भी दोनों देश सहमत हो गए। इस समझौते की अवधि समाप्त होने पर इसी के आधार पर जनवरी सन् १९५७ में एक नया समझौता तीन वर्ष के लिए हुआ। ये दोनों समझौते पहले समझौतों से अधिक सफल हुए। सन् १९६० में सुधरे हुए वातावरण में एक और समझौता हुआ है, जिसके और भी अधिक सफल होने की संभावना है।

पाकिस्तान से भारत जूट, चावल, मछलियाँ, खालें, फल व तरकारियाँ, मुर्गियाँ व बत्तखें, अंडे इत्यादि वस्तुएँ आयात करता है। भारत पाकिस्तान को कोयला, सूती वस्त्र, चीनी, वनस्पति तेल, मसाले, औषधियाँ, लकड़ी, पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ इत्यादि देता है।

दोनों देशों के व्यापार का भविष्य दोनों देशों के राजनीतिक सम्बन्धों पर निर्भर है। दोनों देश अपना-अपना उत्पादन बढ़ा कर एवं नए उद्योग स्थापित करके एक-दूसरे पर कम निर्भर होने के यत्न कर रहे हैं। तो भी कुछ काल तक दोनों देशों के बीच व्यापारिक सम्पर्क बढ़ने की संभावना है। पाकिस्तान भारत से सबसे अधिक मात्रा में कोयला मंगाता है। गत वर्षों में उसने चीन से कोयला मंगाने का यत्न किया है। इधर चीन की सीमा पर मतभेद बढ़ने के कारण पाकिस्तान को भारतीय कोयले का अधिक आयात करना पड़ेगा। पाकिस्तान अपनी आवश्यकता का कपड़ा भी ब्रिटेन, जापान, फ्रांस, इटली आदि दूर देशों से मगाने लगा है, जिसमें उसे उतनी सुविधा नहीं जितनी भारत से मगाने में है। बीड़ी बनाने के लगभग ४०० नए कारखाने पाकिस्तान ने हाल में चालू किए हैं। इससे भारत से बीड़ी बनाने के पत्तों के निर्यात की संभावना बढ़ गई है। रसायनिक पदार्थ, औषधियों, मशीनों, मसालों, कागज, लेखन सामग्री, चाय के डिब्बे, इत्यादि वस्तुओं के निर्यात की भी अच्छी सम्भावनाएँ हैं। मशीनों, मशीनी यंत्रों, बिजली उपकरण, सीने की मशीनों, साइकिलों, बिजली के पंखे इत्यादि इंजीनियरी पदार्थों का भी पाकिस्तान में एक विस्तृत बाजार है। अतएव आशा है कि भविष्य में दोनों देशों के व्यापारिक सम्बन्ध सुधरेंगे।

Q. 29. What are the chief characteristics of India's present trade with England? Are they beneficial for our country?

(Luck., 1955)

भारतवर्ष के इस समय के इंगलैंड से व्यापार की क्या क्या मुख्य विशेषताएँ हैं? क्या वे हमारे राष्ट्र के लिये अच्छी हैं?

लगभग दो शताब्दियों के निकट सम्बन्ध के कारण भारतीय व्यापार में ब्रिटेन का प्रमुख स्थान रहा है। १९ वीं शताब्दी के कुछ वर्षों में हमारे कुल व्यापार का

८५ प्रतिशत ब्रिटेन के साथ होता था। प्रथम विश्वयुद्ध तक स्थिति लगभग ऐसी ही बनी रही। इसके उपरान्त अन्य क्षेत्रों में हमारे व्यापार का प्रसार हुआ। इस प्रसार के साथ-साथ ब्रिटेन का भाग कम होने लगा। यह प्रवृत्ति अब भी जारी है। तो भी भारतीय व्यापार में ब्रिटेन का भाग अब भी सर्वोपरि है। वह हमारे एक-चौथाई व्यापार के लिये उत्तरदायी है, जैसा नीचे के आँकड़े प्रदर्शित करते हैं :—

गत वर्षों का भारत-ब्रिटेन का व्यापार

(करोड़ रुपए)

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल जोड़	%
१९५७	२३८'५०	१६१'०२	३९९'५२	२४
१९५८	१६८'५३	१६६'२९	३३४'८२	२४
१९५९ (११ महीने)	१५४'६३	१५१'०५	३०५'६८	२३

उपर्युक्त आँकड़े संकेत करते हैं कि आयात और निर्यात गत दो वर्षों में लगभग समान रहे हैं, यद्यपि इससे पूर्व आयात निर्यात का लगभग डेढ़ गुना होता था। भारतीय आयात में प्रमुख मशीनें हैं, जिनका भाग कुल का लगभग ४५ प्रतिशत होता है। दूसरा महत्वपूर्ण आयात परिवहन उपकरण और गाड़ियाँ हैं। धातुएँ, धातु-निर्मित पदार्थ, वैज्ञानिक यंत्र-उपकरण, रसायनिक पदार्थ, रंग व रंगाई का सामान, औषधियाँ, डोरा व सूत, कागज इत्यादि अन्य महत्वपूर्ण वस्तुयें ब्रिटेन से भारत आती हैं।

भारतीय निर्यात में मुख्य पदार्थ चाय, चमड़ा, सूती वस्त्र, तम्बाकू, जूट का माल, ऊन एवं ऊनी माल, वनस्पति तेल, खनिज लोहक, रुई, अभ्रक, जटा की वस्तुएँ, काजू, खालें, मसाले, इत्यादि सम्मिलित हैं।

निकट भविष्य में भारत-ब्रिटेन के व्यापार में विशेष कमी की सम्भावना नहीं है। इसके कई कारण हैं—(१) ऐतिहासिक कारणों से भारतीय व्यापार में ब्रिटेन का सर्वोपरि भाग है। (२) भारतीय औद्योगिक ढाँचा ब्रिटेन से सर्वथा सम्बद्ध है। हमारा उद्योगपति और कारीगर (mechanic) ब्रिटेन की मशीनों से भली भाँति परिचित है और उनका प्रयोग जितनी दक्षता और जितने विश्वास के साथ कर सकता है उतना अन्य मशीनों का नहीं। हमारी मशीनों के कल-पुर्जे भी ब्रिटेन से ही आने आवश्यक हैं। (३) भुगतान सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण एवं ब्रिटेन के पास भारत के पौंड पावने का सचय कोष होने के कारण भारत को ब्रिटेन के साथ व्यापार करने में सुविधा रहती है। (४) भारत ने स्टर्लिङ्ग और ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल की सदस्यता भी स्वीकार की है।

दो कारण हैं—पाकिस्तानी प्रतियोगिता एवं कागज के बोरों का अधिकाधिक प्रयोग। यदि ब्रिटेन में हम अपने जूट के माल के बाजार का विस्तार करने में विफल रहते हैं तो हमारे निर्यात बढ़ाने के सारे यत्न असफल रहेंगे। अतएव इस ओर हमें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

(६) ब्रिटेन भारतीय सूती वस्त्रों का भी महत्वपूर्ण बाजार है। ब्रिटेन के कपड़े के आयात में भारत का भाग सब देशों से अधिक है। भारत ब्रिटेन के कुल सूती कपड़े के आयात के ३०% के लिए उत्तरदायी है, जबकि हांगकांग का भाग २०% और जापान का २०% है। भारत ब्रिटेन के कोरे कपड़े की माँग के ६०% की पूर्ति करता है। लंकाशायर के वस्त्र उद्योग की आपत्ति और आन्दोलन के कारण गत वर्षों में भारतीय कपड़े का निर्यात कम हो गया है।

(७) जूट के माल और सूती वस्त्र दोनों ही का बाजार ब्रिटेन में बड़ा अनिश्चित है। ऐसा प्रतीत होता है कि बिना विशेष प्रयास के हमारी इन वस्तुओं की अधिक खपत की संभावना नहीं है।

(८) भारतीय चमड़े का भी ब्रिटेन में उत्तम बाजार है। चाय की भाँति ब्रिटेन भारतीय चमड़े का अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए ही आयात नहीं करता, उसका कुछ भाग पुनर्निर्यात भी करता है। भारतीय चमड़ा ब्रिटेन के उद्योग के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। अतएव ब्रिटेन की माँग के ५०% की पूर्ति भारत से होती है और यह माँग उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इस भाँति भारतीय निर्यात बढ़ने की अच्छी सम्भावना है।

(९) गत तीन-चार-वर्षों में भारतीय तम्बाकू का निर्यात एक ही सीमा पर (लगभग ८ करोड़ रुपए) बना हुआ है। यदि हम अपने तम्बाकू के गुण के सम्बन्ध में सचेत रह सकें और निर्मित तम्बाकू के अधिकाधिक निर्यात की संभावना की ओर ध्यान दे सकें तो ब्रिटेन में भारतीय तम्बाकू की खपत बढ़ने की पूरी सभावना है, क्योंकि ब्रिटेन में इसका उपभोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है।

(१०) रुई, काजू, खालें, ऊन, बिछौने, जटा की वस्तुएं, दस्तकारी की वस्तुएँ भी ब्रिटेन में अधिकाधिक मात्रा में निर्यात की जा सकती हैं। इसके लिए हमें विज्ञापन और प्रचार की आवश्यकता है। माल के मूल्य की ओर भी हमें ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारी वस्तुओं का मूल्य प्रतियोगी वस्तुओं के मूल्य के अनुरूप होना चाहिए। लन्दन में भारत का एक व्यापार-केन्द्र खोलने की सम्भावना पर भी हमें गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

Q. 30. What are the special features of India's trade with U. S. A. at present? Are they beneficial in the fulfilment of our national aspirations? (Luck., 1956)

(क) संयुक्त राष्ट्र हमें खाद्यान्न जैसे जीवनोपयोगी पदार्थ ही नहीं देता, वह हमें रुई जैसे औद्योगिक कच्चे पदार्थ, मशीनें, धातुएँ व धातु पदार्थ, परिवहन यान-उपकरण, रसायनिक पदार्थ एवं खनिज तेल इत्यादि भी देता है, जिनके ऊपर हमारी सारी औद्योगिक और आर्थिक उन्नति निर्भर है। इनमें से किसी भी वस्तु के प्राप्त करने में जब जब हमें कठिनाई हुई है तब-तब ये वस्तुएँ संयुक्त राष्ट्र से सहज सुलभ होती रही है। इस भाँति गत वर्षों में देश में जो कुछ उन्नति कृषि, उद्योग, परिवहन इत्यादि क्षेत्रों में हुई है उसका बहुत कुछ श्रेय अमरीकी सहायता को है।

(ख) यह देश हमें आवश्यक माल व वस्तुएँ ही नहीं देता रहा, हमारी विविध योजनाओं को सफल बनाने के लिए शॉल्पिक प्रशिक्षण, आर्थिक सहायता, शॉल्पिक परामर्श एव शिल्पी व विशेषज्ञ इत्यादि भी देता रहा है।

(ग) संयुक्त राष्ट्र हमारा महत्वपूर्ण उपलब्धिकर्त्ता ही नहीं, हमारे माल का उत्तम ग्राहक भी है। हमारे ग्राहकों में उसका स्थान द्वितीय है। अमेरिका की बर्लप (burlap) की ½ माँग की पूर्ति भारत करता है। अभ्रक, लाख व काली मिर्च का दो-तिहाई भाग अमेरिका में भारत से पहुँचते हैं। खनिज लोहक (manganese) और चाय का लगभग एक-तिहाई भाग भी भारत से पहुँचता है। इन सभी वस्तुओं की अधिक मात्रा में खपत की सम्भावना है। सीधा सम्पर्क स्थापित करके, व्यापारिक शिष्ट मण्डल भेजकर एवं विज्ञापन व प्रचार द्वारा हम अपनी निर्यात वस्तुओं की बहुत कुछ खपत बढा सकते हैं। वस्तुओं के गुण सुधार एवं प्रतियोगी मूल्यों की भी आवश्यकता है।

(घ) अमरीकी लोग वाणिज्य प्रेमी हैं; वे वाणिज्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का आदर करते है। सारा अमरीकी जीवन वाणिज्य-धुरी के चारो ओर केन्द्रित है। अतएव वाणिज्य-व्यवसाय के सिद्धान्तों के अनुसार हमें उनके साथ व्यवहार करना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र मे एक सूचना एवं विनियोग केन्द्र (Information and Investment Centre) खोलने और अन्य संगठन सम्बन्धी समायोजन करने के सुझाव दिए गए हैं।

(ङ) यद्यपि संयुक्त राष्ट्र मे हमारी कई महत्वपूर्ण निर्यात वस्तुओं के लिए उत्तम बाजार है, तो भी वहाँ हमें विदेशी प्रतियोगिता का सामना करना पडता है। जूट के माल में पाकिस्तान, खनिज लोहक में ब्राजील, मरक्को और दक्षिणी अफ्रीका, चाय में लंका और इण्डोनेशिया, काली मिर्च मे इण्डोनेशिया हमारे प्रतियोगी हैं। इस प्रतियोगिता के बचाव की नितान्त आवश्यकता है।

Q. 31. Which commodities play an important part in the export and import trade of India with U.S.A, U.S.S.R., Japan and Ceylon? What are the future prospects of these commodities? (Agra, 1958)

संयुक्त राष्ट्र, रूस, जापान और लंका के व्यापार में भारत की किन आयात और निर्यात वस्तुओं का महत्वपूर्ण स्थान है ? इन वस्तुओं का भविष्य कैसा है ?

(१) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—

भारत और अमेरिका के व्यापार का संक्षिप्त विवरण प्रश्न ३० में दिया जा चुका है। आयात-निर्यात वस्तुओं की ओर भी संकेत किया गया है। यहाँ केवल उन वस्तुओं का सापेक्षिक महत्व और भावी सम्भावनाओं की ओर दृष्टिपात करना शेष है।

आयात	१९५७	१९५८
खाद्यान्न	४२·०२	८३·११
मशीनें	३६·१८	२३·८१
रुई	२२·३२	८·७१
धातुएँ एवं धातु पदार्थ	१९·१७	८·४८
परिवहन उपकरण	१३·४१	६·५५
रासायनिक पदार्थ	१०·४५	७·१६
खनिज तेल	६·७०	४·३६

निर्यात	१९५७	१९५८
जूट का माल	३३·५७	३३·३६
खनिज लोहक (Manganese)	१४·६०	८·८२
काजू	१०·९६	११·१७
चाय	६·४१	७·८२
लाख	३·३३	
वनस्पति तेल	३·६०	५·७४
ऊन	२·९३	
अभ्रक	२·७५	
चमड़ा व खालें	२·५२	
काली मिर्च	१·११	
रुई (कच्ची व रद्दी)	०·७६	
ऊन व वस्त्र	०·७८	

आयात—

भारत में खाद्यान्न की स्थिति बड़ी डाँवाडोल है। यद्यपि तृतीय योजना में हमने स्वावलम्बी होने का लक्ष्य अपनाया है, किन्तु विश्वासपूर्वक सफलता की आशा नहीं की जा सकती, क्योंकि अनेक बार मानवीय प्रयत्नों को दैवी घटनायें विफल कर देती हैं। जब तक हम अन्न के सम्बन्ध में स्वावलम्बी नहीं होंगे तब तक संयुक्त राष्ट्र

से खाद्यान्न का आयात करना हमारे लिये अनिवार्य सा है। मशीनों के आयात के सम्बन्ध में भी ऐसी ही स्थिति प्रतीत होती है। यद्यपि देश में अधिकाधिक मशीनें बनाने के पूरे यत्न हो रहे हैं तो भी स्वावलम्बी होने में कुछ समय लगेगा और अमेरिका का आयात जारी रहेगा। बड़े रेशे की रुई का एक बड़ा भाग हम अफ्रीका के देशों से मँगाते हैं, किन्तु संयुक्त राष्ट्र का सहयोग भी आवश्यक है। इसी भांति खनिज तेल का एक बड़ा भाग पश्चिमी एशिया के देशों से आता है तो भी विमान स्प्रिट और उपस्नेह इत्यादि तेल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से आयात करने पड़ते हैं। धातु पदार्थों, परिवहन उपकरणों और रासायनिक पदार्थों का आयात अमेरिका से करते रहना अभी कुछ वर्ष तक आवश्यक है।

निर्यात—

भारत के निर्यात वस्तुओं में जूट का माल प्रमुख है। लगभग ३४ करोड़ रुपए का डालर प्रति वर्ष इससे हमें प्राप्त होता है। इस बाजार में पाकिस्तान से प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गई है। अतएव अपनी स्थिति बनाये रखने के लिये माल के गुण एवं मूल्य की ओर हमें सावधान रहना है। प्रचार भी आवश्यक है। दूसरी महत्वपूर्ण वस्तु खनिज लोहक है, जिसका निर्यात हाल में ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका, मैक्सिको की प्रतियोगिता के कारण कुछ कम हो गया है। जिस सीमा तक हम इस प्रतियोगिता का बचाव कर सकते हैं उसी सीमा तक इसका निर्यात उचित स्तर पर रह सकता है। काजू के निर्यात में हमारा एकाधिकार है, किन्तु इसका निर्यात कुछ सीमा तक पूर्वी अफ्रीका की फसल पर निर्भर है। चाय का निर्यात कुछ अस्थिर-सा रहा है। लंका और इण्डोनेशिया हमारे प्रतियोगी हैं। प्रचार द्वारा अमेरिका के लोगों को चाय का अधिक उपभोग करने और अपना निर्यात बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। काली मिर्च, अभ्रक और लाख अन्य हमारे निर्यात की महत्वपूर्ण वस्तुएँ हैं, जिनके निर्यात में हाल में कुछ गिरावट हुई है। इसका कारण विदेशी प्रतियोगिता है। इस प्रतियोगिता का बचाव करके गुण सुधार, मूल्य समायोजन और विज्ञापन-प्रचार द्वारा इनके निर्यात में सुधार कर सकते हैं।

अमेरिका की अर्थ-व्यवस्था एक विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्था है। हमारे निर्यात की बड़ा अच्छी सम्भावना है। प्रदर्शनियाँ करके, व्यापारिक केन्द्र खोलकर, सीधी पोत-चालन सेवा प्रारम्भ करके, व्यापारिक शिष्ट मण्डल भेजकर इस बढ़ते हुये बाजार का हमें उचित लाभ मिल सकता है।

(२) रूस—

द्वितीय युद्ध से पूर्व भारत-रूस का व्यापार न के बराबर था। युद्धोत्तर काल में खाद्यान्न समस्या के भयानक हो जाने के कारण रुई और चाय के बदले गेहूँ और मक्का लेने के लिए हमें बाध्य होना पड़ा। इस भाँति दोनों देशों का व्यापारिक सम्पर्क हुआ। सन् १९५३ में दोनों देशों के बीच एक पचवर्षीय व्यापारिक समझौता

के साथ फिर से सम्पर्क स्थापित किया। तब से भारत-जापान के व्यापार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। यह वृद्धि सन् १९५३ से विशेष दृढ होती गई है। सन् १९४७-४८ में जापान के साथ होने वाले भारतीय व्यापार का मूल्य ११ करोड़ रुपए (कुल का १%) था; सन् १९५८ में ६६ करोड रुपए और सन् १९५९ में ७० करोड़ रुपए हो गया। हमारे व्यापार में अब जापान का चौथा स्थान है और उसका भाग ५% है।

भारत-जापान का वर्तमान व्यापार

(करोड रुपये)

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल व्यापार
१९५७	५४'४२	२७'३४	८१'७६
१९५८	३९'६६	२५'८६	६५'५२
१९५९ (११ महीने)	३७'८८	३१'३५	६९'२३

भविष्य में भारत जापान के व्यापार में सुधार की ही संभावना है। इसके कई कारण हैं :—(१) जापान एशिया का ही नहीं, विश्व का एक उद्योग प्रधान एवं समृद्धशाली देश है। वह अपने शैल्पिक ज्ञान के लिए जगत प्रसिद्ध है। भारत अपनी औद्योगिक उन्नति में लगा हुआ है। अतएव उसे जापान से बहुत कुछ सीखना और लेना है। (२) पाश्चात्य उद्योग प्रधान देशों की अपेक्षा वह हमारे निकट है। (३) बौद्ध देश होने के नाते भारत के साथ उसका सास्कृतिक लगाव है। (४) सन् १९५८ के समझौते के द्वारा दोनों देशों ने एक-दूसरे के साथ व्यापारिक सम्बन्ध और सम्पर्क बढाने का वचन दिया है।

द्वितीय युद्ध से पूर्व जापान से भारत बहुधा उपभोग्य-वस्तुएँ आयात करता था। अब उनका स्थान पूँजीगत पदार्थों ने ले लिया है। गत वर्षों में आयात में वृद्धि होती रही है। इस समय आयात में मुख्य लोहे-इस्पात की वस्तुएँ, रेल चलयान, बुनाई मशीनें, रेयन का माल, ऊनी वस्त्र, रसायनिक पदार्थ, रंग व रंगाई का सामान, सूती वस्त्र, दर्शन-यंत्र इत्यादि सम्मिलित हैं। भारत ये सभी वस्तुएँ बनाने लगा है, किन्तु सभी वस्तुओं में स्वावलम्बी होने में कुछ समय लगेगा।

जापान भारतीय माल का तीसरा बड़ा ग्राहक है। हमारी निर्यात वस्तुओं में मुख्य रुई (कच्ची व रद्दी) और खनिज लोहा हैं, जिनके हमारे कुल निर्यात का ५०% जापान लेता है। हमारी अन्य निर्यात-वस्तुएँ खनिज लोहक, अभ्रक, कोयला, तम्बाकू, नमक, जूट-पदार्थ, काफी, जटा की वस्तुएँ, लाख, मसाले, चाय इत्यादि हैं। रुई के बाजार में संयुक्तराष्ट्र, मैक्सिको, पाकिस्तान व ब्राजील ; खनिज लोहे में फिलिप्पाइन, कनाडा, संयुक्तराष्ट्र, व मलाया; रद्दी लोहे में संयुक्त राष्ट्र, फिलिप्पाइन, कनाडा, हांगकांग, सिंगापुर, इंडोनेशिया, मलाया व कोरिया ; खनिज लोहक में संयुक्त राष्ट्र,

निर्यात मे सूती वस्त्र, मछलियाँ, चीनी, गुड व शीरा, बीडियाँ, कोयला, प्याज, लाल मिर्च, चल-चित्र, दालें इत्यादि मुख्य हैं। इंजीनियरी पदार्थ (कृषियन्त्र, बिजली के पखे, सीने की मशीनें, साइकिलें इत्यादि), खेल का सामान, खपरैल, सीमेंट, हाथ-करघा-वस्त्र, खाद, जूट का माल, कृत्रिम रेशमी वस्त्र, चमडा, अंडे, जीरा, औषधियाँ इत्यादि वस्तुओं की माँग भी लंका मे बढती जा रही है।

हमारे सूती वस्त्रो के कुल निर्यात का लगभग २५ प्रतिशत लका जाता है। इस बाजार मे जापान और ब्रिटेन से बडी प्रतियोगिता होने लगी है। हाल मे चीन और चेकोस्लोवाकिया भी आकर्षक विज्ञापनो के साथ हमारे प्रतियोगी बन कर आ गये हैं। इसी भाँति मछलियो के बाजार मे अदन और पाकिस्तान से; प्याज मे लेबनान और मिश्र से, लाल मिर्च मे पाकिस्तान और थाईलेन्ड से, कोयले मे चीन से प्रतियोगिता होती है। लका एक कृषि प्रधान देश है। वहाँ पर भारत के नये औद्योगिक पदार्थों की अच्छी खपत हो सकती है। अपने माल की खपत बढाने के लिये उचित प्रचार, मूल्य समायोजन, निकट सम्पर्क इत्यादि प्रयत्नो की आवश्यकता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भौगोलिक निकटता और सांस्कृतिक सम्बन्ध हमारे लिय अत्यन्त अनुकूल वातावरण उपस्थित करते हैं।

———

Q. 32. Discuss the present position and future prospects of India's foreign trade with any two of the following—

(a) South East Asia
(b) U. S. A.
(c) Australia
(d) Burma **(Agra, 1959)**

निम्न में से किन्हीं दो के साथ भारत के विदेशी व्यापार की वर्तमान स्थिति और भविष्य की सम्भावनाओं के विषय में प्रकाश डालिये : (क) दक्षिणी पूर्वी एशिया, (ख) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, (ग) आस्ट्रेलिया, (घ) ब्रह्मा।

(१) ब्रह्मा—

निकट पूर्व के देशो के भारतीय व्यापार की दृष्टि से ब्रह्मा सबसे महत्वपूर्ण है। अति प्राचीन काल से भारत-ब्रह्मा के बीच व्यापार होता रहा है। सन् १९३७ से पूर्व लगभग १ शताब्दी तक ब्रह्मा भारत का एक प्रान्त था। भारत से अलग होने के उपरान्त युद्ध पूर्व के वर्षो मे भारत के व्यापार मे उसका स्थान तृतीय था। युद्ध काल मे ब्रह्मा जापान के प्रभुत्व मे चला गया और उससे हमारा व्यापार सर्वथा बन्द हो गया। युद्ध समाप्त होने पर दोनों देशो मे फिर व्यापार चालू हो गया और तब से उत्तरोत्तर उसमे वृद्धि होती गई है। किन्तु अभी ब्रह्मा का भाग हमारे व्यापार मे

देश होने के नाते इन देशों के साथ अति प्राचीन काल से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। इस समय सब देश मिल कर लगभग १५ प्रतिशत भारतीय व्यापार के लिए उत्तरदायी है। सन् १९५८ मे इनके साथ होने वाले व्यापार का मूल्य २२१ करोड रु० था, जिसमे १२८ करोड रुपये आयात और ९३ करोड़ रुपए निर्यात सम्मिलित था। सन् १९५९ के प्रथम ११ महीनों मे १८६ करोड़ रुपये का व्यापार इनके साथ हुआ जिसमे ८७ करोड रुपए का आयात और ९९ करोड़ का निर्यात था। इस व्यापार मे प्रत्येक देश का सापेक्षक महत्व निम्न आंकडो (सन् १९५८) मे समझा जा सकता है :—

देश	आयात	निर्यात	कुल जोड़
जापान	३९·६६	२५·८६	६५·५२
ब्रह्मा	४५·५४	७·५४	५३·०८
लका	४·३०	२०·१०	२४·४०
सिंगापुर	९·२९	१०·१४	१९·४३
मलाया	१०·७०	४·९०	१५·६०
पाकिस्तान	६·२८	७·१६	१३·४४
चीन	५·२८	३·४३	८·७१
हांगकांग	०·८८	५·४२	६·३०
इण्डोनेशिया	३·३१	२·८८	६·१९
वियतनाम (उ० द०)	१·९६	१·३७	३·३३
थाईलैण्ड	०·४५	२·४४	२·८९
फिलिप्पाइन	०·२०	०·९९	१·१९
कम्बोडिया	—	०·६६	०·६६
कुल	१२७·८५	९२·९०	२२०·७५

जापान, ब्रह्मा, लका, पाकिस्तान के व्यापार का विवरण पिछले पृष्ठो मे दिया जा चुका है। चीन से भारत रेशम शालें और कुछ रसायनिक पदार्थ आयात करता है। इनके बदले मे चीन को जूट का माल, तम्बाकू, लाख, अभरक, चीनी और मसाले देता है। चीन मे चीनी और अभ्रक की अच्छी खपत की सम्भावना बताई जाती है। ऊन, औषधियाँ, सीने की मशीनें, बिजली के पंखे एवं अन्य इन्जीनियरी पदार्थों के निर्यात की भी सम्भावना है। सिंगापुर से भारत रबड और टीन लेता है। इस क्षेत्र के अन्य देश बहुधा कृषि-प्रधान देश हैं, जो प्रारम्भिक उपज के निर्यात द्वारा अपनी राष्ट्रीय-आय का एक बडा भाग प्राप्त करते हैं। थाईलैण्ड, कम्बोडिया और *वियतनाम से भारत मुख्यतः चावल आयात करता है। इन्डोनेशिया से गोला (खोपडा),* और रबड, फिलिप्पाईन से गोला और गोले का तेल।

कुल व्यापार में श्रास्ट्रेलिया का भाग लगभग २½ प्रतिशत है। भारतीय आयात में प्रमुख भाग खाद्यान्न अर्थात् गेहूँ, गेहूँ का आटा, मक्का इत्यादि का है। अन्य उल्लेखनीय आयात जस्ता, सीसा, दूध व दूध से बनी हुई वस्तुयें, ऊन व शहद, ताजे संरक्षित फल, मेवे, औषधियाँ इत्यादि हैं। श्रास्ट्रेलिया लोहा और इस्पात; सडक बनाने और मिट्टी खोदने के उपकरण, तार और बेतार के उपकरण, भी भारत को देने की स्थिति मे है।

भारत से श्रास्ट्रेलिया को जूट का माल बडी मात्रा मे जाता है। हमारे कुल निर्यात मे इसका भाग ६० प्रतिशत है। प्रति वर्ष ८० हजार टन जूट का माल श्रास्ट्रेलिया जाता है। चाय, सूती वस्त्र, वनस्पति तेल, रई, ऊन, नारियल के रेशे, तम्बाकू इत्यादि वस्तुयें भी भारत से श्रास्ट्रेलिया जाती हैं। हाल में सिलाई की मशीनें, लालटेन, डीजिल इन्जन, सिगरेट बनाने के कागज भी श्रास्ट्रेलिया जाने लगे हैं और उनकी अच्छी सम्भावना बताई जाती है। भारतीय चाय, सूती व रेशमी वस्त्र, निर्मित तम्बाकू, मसाले और खेल का सामान इत्यादि वस्तुओं के निर्यात की श्रास्ट्रेलिया मे अच्छी सम्भावना बताई जाती है।

निकट भविष्य मे दोनो देशों के व्यापार मे सुधार की सम्भावना है। इसके कई कारण है :—(१) दोनो देश स्टर्लिङ्ग क्षेत्र मे हैं, (२) दोनो देश दक्षिणी-पूर्वी एशिया की समस्याओं मे रुचि रखते है और उन्हें सुलझाने के लिये अनुकूल स्थिति मे हैं, (३) श्रास्ट्रेलिया भारत को खाद्यान्न देने मे प्रमुख रहा है, (४) पश्चिमी देशों की अपेक्षा भारत श्रास्ट्रेलिया के निकट है, (५) दोनो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के देश हैं, अतएव भुगतान सम्बन्धी विशेष कठिनाइयाँ उपस्थित नहीं होतीं।

(४) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—

भारतीय व्यापार के दृष्टिकोण से सयुक्त-राष्ट्र अमेरिका का स्थान विश्व के राष्ट्रों में ब्रिटेन के बाद दूसरा है। इस देश के साथ हमारा व्यापार गत वर्षों मे तेजी से बढता रहा है और भविष्य मे भी इसी भाँति बढने की सम्भावना है। इसके व्यापार का विस्तृत विवरण प्रश्न ३० एव ३१ मे दिया जा चुका है।

Q. 33. Discuss the present position and future prospects of India's foreign trade with any two of the following : (a) Middle East; (b) Germany; (c) Britain (d) Ceylon. (Agra 1959 S.)

निम्नांकित में से किन्हीं दो के साथ भारत के व्यापार की वर्तमान स्थिति और भविष्य की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालिये : (क) मध्यपूर्व; (ख) जर्मनी, (ग) ब्रिटेन; (घ) लका।

भारतीय निर्यात वस्तुओं मे काफी, चमडा व खाले, चाय, खनिज लोह्व, अभ्रक, जटा की वस्तुएँ, रुई (कच्ची व रद्दी), लाख, वनस्पति तेल, ऊन, जूट का माल, मसाले इत्यादि मुख्य हैं। भारत जर्मनी को चाय की माँग के ४०% की पूर्ति करता है। चाय का उपभोग गत वर्षों मे तेजी से बढ़ता गया है और भविष्य मे और भी बढ़ने की सम्भावना है। यदि लंका व इंडोनेशिया की प्रतियोगिता का सामना किया जा सके तो भारतीय चाय की खपत बढ सकती है। गत वर्षों मे काफी के निर्यात में वृद्धि हुई है और यदि हम काफी का देश मे उत्पादन बढ़ा सकें तो जर्मनी को इसका निर्यात भी अधिक हो सकता है। जूट के माल का निर्यात गत वर्षों मे जर्मनी को कम हुआ है और उसकी सभावनाएँ भी सीमित प्रतीत होती हैं, क्योंकि जर्मनी का अपना उद्योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तौलिये, पर्दे, बिछौने, हथकरघा वस्त्र इत्यादि सूती वस्त्रों की अच्छी सम्भावना बताई जाती है। वनस्पति तेल (मुख्यतः मूँगफली का और अलसी का), खनिज लोह्क, काजू, काली मिर्च, ऊनी कालीन व कम्बल इत्यादि के निर्यात वृद्धि की भी सम्भावना है।

(२) मध्य पूर्व—

पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के कुछ देश जो यूरोप मे पूर्व और भारत से पश्चिम मे स्थित हैं उन्हे मध्य पूर्व के देश कहा जाता है। भारतीय व्यापार के दृष्टिकोण से इनमें से ईरान, सूडान, मिश्र, सऊदी अरब, अफगानिस्तान, कुवेत, बेहरिन द्वीप, अदन, ईराक, तुर्की, सीरिया, लेबिनान, इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। इन देशों का जीवन-स्तर निम्न कोटि का है और उनकी राष्ट्रीय आय कम है। अपनी अर्द्ध-विकसित अवस्था के कारण इन देशों का व्यापार भी थोडा है। किन्तु भारत का व्यापारिक सम्बन्ध अति प्राचीन काल से इनके साथ रहा है। पडौसी देश होने के नाते तथा समान अर्थ-व्यवस्था के कारण भारत के लिए इन देशों का व्यापारिक महत्व अति महत्वपूर्ण है। द्वितीय युद्ध काल मे यूरोप और जापान के साथ इन देशो का व्यापारिक सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के कारण भारत को इनके साथ बडे पैमाने पर व्यापार करने का अवसर मिला। फलतः भारतीय वस्तुओं के लिए इन देशों मे अच्छी रुचि उत्पन्न हो गई। प्रतिकूल व्यापारिक सन्तुलन के कारण इस समय हमें निर्यात बढाने की विशेष आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से इन देशो का हमारे लिए विशेष महत्व है। खनिज तेल और रुई के आयात तथा अपने नये औद्योगिक पदार्थों के निर्यात के दृष्टिकोण से भी इन देशों का विशेष महत्व है।

गत वर्षों मे इनके साथ हमारे व्यापार मे वृद्धि होती रही है। सन् १९५३-५४ और सन् १९५६ ५७ के चार वर्षों मे यह वृद्धि ३० प्रतिशत आँकी गई। आयात की अपेक्षा निर्यात मे अधिक वृद्धि हुई, जो इन्हीं वर्षों मे ६५ प्रतिशत थी। यह वृद्धि हमारे गत वर्षों के प्रयत्नों का फल है। इन देशों को व्यापारिक शिष्ट मण्डल भेजे गये और इन देशो से भी आए। इस समय ये सब देश मिलकर हमारे लगभग १० प्रतिशत व्यापार के लिए उत्तरदायी हैं।

अध्याय १०

व्यापारिक समझौते

(Trade Agreements)

Q. 34. Define and distinguish between bilateral and multilateral trade agreements. Which one of them is better from the point of view of the development of trade and why? (Agra, 1959 Supp.)

द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापारिक समझौतों की परिभाषा कीजिए और उनका अन्तर भी समझाइए। व्यापारिक विकास के दृष्टिकोण से उनमे से कौन समझौते अच्छे समझे जाते हैं और क्यों?

द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते वे हैं जो कि दो देशो के बीच मे होते हैं; बहुपक्षीय समझौते वे है जो कि अनेक देशो के बीच मे होते हैं। प्रथम प्रकार के समझौते अल्पकालीन और दूसरी प्रकार के दीर्घकालीन होते हैं, प्रथम प्रकार के समझौतो की अवधि बहुधा एक-दो वर्ष होती है। कभी-कभी ये ६ महीने अथवा ५ वर्ष तक की अवधि के लिये भी होते हैं। इसके विपरीत दीर्घकालीन समझौतो की अवधि १० वर्ष, २० वर्ष अथवा उससे भी अधिक होती है। द्विपक्षीय समझौतो मे अवधि समाप्त होने पर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर लिया जाता है, जिसमें विशेष कठिनाई नही आती। दीर्घकालीन समझौतो मे ऐसे परिवर्तन सहज सम्भव नही। द्विपक्षीय समझौते पक्षपात के सूचक है, किन्तु बहुपक्षीय समझौते निष्पक्ष भाव और सार्वभौमिक प्रभाव रखते हैं। द्विपक्षीय समझोतो का क्षेत्र सीमित होता है, किन्तु बहुपक्षीय का व्यापक। प्रथम समझौते एक अस्थाई व्यवस्था के, किन्तु द्वितीय समझौते एक स्थाई नीति के द्योतक समझे जाते हैं।

व्यापारिक विकास के दृष्टिकोण से बहुपक्षीय समझौते ही श्रेयस्कर है, क्योंकि इनके अन्तर्गत एक स्थाई नीति के अनुसार व्यापारिक सरिता का प्रवाह स्वाभाविक गति से प्रवाहित होता रहता है; अनेक प्रकार की बाधायें, प्रतिबन्ध और कर इत्यादि उसके मार्ग मे कठिनाई उपस्थित नही करते। इस स्वाभाविक-प्रवाह का परिणाम सुखद होता है। व्यापार के स्वाभाविक विकास से सभी देशो का स्वाभाविक आर्थिक विकास होता है। इसके विपरीत द्विपक्षीय समझौतो द्वारा व्यापार सरिता का स्वाभाविक प्रवाह रुक जाता है और वह कृत्रिम दिशा मे बहने लगती है। इसका परिणाम

मुद्रा कोष (International Monetary Fund) और विश्व बैंक (World Bank or International Bank for Reconstruction and Development) की स्थापना हुई। उक्त सम्मेलन ने अपने एक प्रस्ताव मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मार्ग से बाधायें हटा कर अधिकाधिक व्यापारिक सम्पर्क बढाने का सुझाव दिया। अटलांटिक घोषणा और ब्रैटन वुड्स सम्मेलन के इन सुझावो को व्यावहारिक रूप देने के लिए संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की सरकार ने दिसम्बर सन् १६४५ मे कुछ प्रस्ताव प्रकाशित किये और मित्र राष्ट्रों से एक सम्मेलन मे भाग लेने का आग्रह किया। साथ ही साथ संयुक्त राष्ट्र की सरकार ने एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सगठन का एक कच्चा प्रारूप १५ देशो के पास भेजा। फरवरी सन् १६४६ में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन सम्बन्धी उक्त प्रस्तावो पर संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद (U. N. Economic and Social Council) ने विचार किया और १८ देशो की एक प्रारम्भिक समिति बनाई। अक्टूबर नवम्बर सन् १६४६ में लन्दन में इस समिति की प्रथम बैठक हुई, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सगठन सम्बन्धी प्रस्तावों पर विचार विनिमय हुआ। अप्रैल-अगस्त सन् १६४७ मे जिनेवा मे इस समिति की दूसरी बैठक हुई, जिसने मूल प्रस्तावो मे कुछ संशोधन किये। इस समिति की तीसरी बैठक नवम्बर सन् १६४७ में हवाना मे हुई और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सगठन के विधान को अन्तिम स्वरूप दिया गया। इस अन्तिम विधान पर मार्च सन् १६४८ मे हवाना स्थान पर ही ५३ देशो ने हस्ताक्षर किये। इसका मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सगठन बनाकर विश्व के व्यापार का विकास और प्रसार था। इस विधान अथवा नियमावली को हवाना घोषणा (Hawana Charter) कहा जाता है।

हवाना समझौते के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं :

(१) विश्व के राष्ट्रों को पथ-प्रदर्शन द्वारा ऐसे काम करने से रोकना जिससे विश्व के व्यापार को धक्का लगे।

(२) व्यापारिक तट करो एवं रुकावटों को कम करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र से भेद-भाव मिटाना।

(३) व्यापारिक क्षेत्र से पक्षपात हटाकर सभी देशो को वस्तुओं, उत्पादक साधनो और बाजारो की प्राप्ति के लिए समान अवसर प्रदान करना।

(४) सभी देशो की आय वृद्धि के साधन उपस्थित कर व्यापारिक वस्तुओं की प्रभावशाली मांग बढाना।

(५) पिछडे हुए राष्ट्रों के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिये सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करना।

(६) उत्पादक विनियोग के लिये अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी के प्रवाह को प्रोत्साहित करना।

और तटकरो मे कमी करने की वार्ता प्रारम्भ की। यह वार्ता अप्रैल-अक्टूबर सन् १९४७ मे जिनेवा मे हुई, जिसके फलस्वरूप १२३ द्विपक्षीय समझौते वार्ता मे भाग लेने वाले देशो मे हुये। इन समझौतो को एक नियमावली द्वारा, जो कि उक्त देशो ने मिलकर बनाई थी, १ जनवरी सन् १९४८ से कार्यान्वित किया गया। इसी नियमावली का नाम तटकर तथा व्यापार सम्बन्धी सामान्य करार रखा गया। इस करार के मुख्य उद्देश्य व्यापारिक क्षेत्र मे भेद-भाव दूर करना, व्यापार वृद्धि के न्यायोचित नियम बनाना तथा व्यापार के मार्ग से बाधायें हटाकर व्यापारिक वृद्धि करना है। करार के सदस्य देशो की जिनेवा में प्रति वर्ष वार्षिक बैठक होती है, जिसमे परस्पर विचार-विनिमय द्वारा व्यापारिक बाधाओ को हटाने और तत्सम्बन्धी समस्याओ को सुलझाने का यत्न किया जाता है। इसके सदस्यो की संख्या अब बढकर ३९ हो गई है और दिनोदिन बढती जा रही है।

(ख) यूरोपीय आर्थिक सहयोग सगठन--

हवाना समझौते की वार्ता के समय ही यह बात स्पष्ट हो गई थी कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सघ के बनने मे अधिक समय लगेगा, क्योंकि सदस्य राष्ट्रो की सरकारो ने स्वीकृति नही दी थी। उस समय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे अनेक प्रतिबन्धो और ऊँचे करो के कारण ऐसी आदर्श सस्था के लिये अनुकूल वातावरण भी नही था। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सघ बनाने का कार्यक्रम अनिश्चित अवधि के लिये स्थगित कर दिया गया। किन्तु व्यापारिक सरिता-प्रवाह को अनिश्चित काल के लिये स्थगित नही किया जा सकता था, क्योंकि ऐसा करने से विश्व की आर्थिक और औद्योगिक गति धीमी पड जाती। अतएव एक ओर सामान्य समझौते की वार्ता चल पडी और दूसरी ओर सीमित क्षेत्र मे व्यापारिक हित रक्षा के निमित्त देशो मे गुट-बन्दी होने लगी। ऐसी एक गुटबन्दी यूरप के १६ देशो मे पारस्परिक आर्थिक सहयोग सम्बन्धी समझौते के द्वारा हुई। ये देश आस्ट्रिया, बेल्जियम, डेनमार्क, फ्रान्स, पश्चिमी जर्मनी, यूनान, आयरलैण्ड, आइसलैण्ड, इटली, लुग्जिमबर्ग, नीदरलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, पुर्तगाल, स्विटजरलैण्ड और टर्की थे। कालान्तर मे ब्रिटेन भी सम्मिलित हो गया। सयुक्तराष्ट्र और कनाडा यद्यपि सगठन के सदस्य नही हैं, इसके कार्यक्रम मे भाग लेते है और युगोस्लेविया का भी एक प्रतिनिधि उपस्थित रहता है। यह सगठन १६ अप्रैल सन् १९४८ को बना। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं : (१) सदस्य राष्ट्रो की कार्यक्षमता, उत्पादन क्षमता और आर्थिक शक्ति का सम्मिलित उपयोग करके उत्पादन बढाना, (२) उनके कृषि और औद्योगिक विकास के निमित्त आवश्यक उपकरणो का आधुनिकीकरण करना, (३) व्यापारिक क्षेत्र का उत्तरोत्तर विकास, (४) व्यापारिक प्रतिबन्धो को धीरे-धीरे कम करना या हटाना, (५) पूर्ण कार्य के लिये मार्ग खोलना, तथा (६) उनकी अर्थव्यवस्था और मुद्राओ की स्थिरता मे विश्वास उत्पन्न करना।

संगठन का मुख्यालय फ्रान्स मे है, जहाँ सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि प्रति दिन मिलते हैं और अपनी विभिन्न आर्थिक समस्याओं पर विचार करते एवं उन्हें सुलझाने के उपाय निकालते हैं।

(ग) मुक्त व्यापार क्षेत्र—

यूरपीय आर्थिक सहयोग संगठन के कुछ सदस्य उसके कार्यक्रम से विशेष प्रभावित न हुये। अतएव ६ सदस्य देशो ने मिलकर अपना एक छोटा गुट्ट बनाया। इस गुट्ट मे बेल्जियम, नीदरलैण्ड, लुग्जिमवर्ग, पश्चिमी जर्मनी, फ्रान्स और इटली सम्मिलित हुये। इन देशो ने २५ मार्च सन् १९५७ को रोम मे एक संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये, जिसे रोम सन्धि नाम दिया गया। यह सन्धि १ जनवरी सन् १९५८ से चालू हुई। इस सन्धि के द्वारा उक्त ६ देशो ने यूरपीय आर्थिक सहयोग संगठन के अन्य देशों की अपेक्षा एक दूसरे के अधिक निकट आकर व्यापार बढ़ाने और सदस्य देशों की अर्थव्यवस्था मे अधिक सामंजस्य और सन्तुलन स्थापित करने का निश्चय किया। इस सन्धि के अनुसार सदस्य देश १२ से १५ वर्ष की अवधि मे सभी व्यापार शुल्कों तथा आयात-निर्यात सम्बन्धी प्रतिबन्धो को हटा देंगे। इस सन्धि का मुख्य उद्देश्य सदस्य देशों के बीच एक मुक्त व्यापारिक क्षेत्र स्थापित करने का है। ऊपर बताई हुई अवधि के समाप्त होने पर इन देशो को व्यापार के दृष्टिकोण से एक अलग शुल्क संघ माना जायगा। उनका व्यापार भी एक देश के व्यापार की भाँति समझा जायगा। इस क्षेत्र के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों और श्रम के आदान-प्रदान की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी।

१ जनवरी सन् १९५९ को उक्त सन्धि के अनुसार सीमा शुल्क मे १०% की कटौती की गई। यह सोचा गया है कि प्रति एक-डेढ़ वर्ष की अवधि के उपरान्त शुल्क दरो मे इसी भाँति १०% कमी की जायगी और १५ वर्ष मे सीमा शुल्क सम्बन्धी रुकावटें सर्वथा हटा दी जायंगी।

इस गुट्ट को साधारण बाजार (Common Market अथवा सीमा शुल्क संघ (Customs Union) भी कहा जाता है।

Q. 37. Examine critically the value and success of the bilateral trade agreements which India has entered into with foreign countries to secure foreign markets. (Agra, 1954)

विदेशी बाजार प्राप्त करने के विचार से भारत ने विदेशों के साथ जो द्विपक्षीय व्यापारिक करार (Trade Agreements) किये हैं, उनके महत्व और सफलता का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिये।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे बहुपक्षीय व्यापारिक सम
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की एक सामान्य प्रवृत्ति समझी जाती थी। प्रथम विश्व यु
इसे अस्त-व्यस्त कर दिया। इस युद्ध के उपरान्त के वर्षों मे विश्व भर मे रा
राष्ट्रीयता का साम्राज्य हो गया। द्वितीय युद्ध ने इस राष्ट्रीय भावना को और भी
बना दिया। राष्ट्रीयता की इस भावना से प्रेरित होकर सभी देशो ने अपने व्य
को नियमो से जकड दिया और उसमे अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये। आयात-निर्यात
ऊँचे-ऊँचे कर लगा दिये गये, उनकी मात्रा निर्धारित कर दी गई, विदेशी वि
का सदुपयोग और समभाजन (Ration) किया जाने लगा। ऐसी स्थिति मे
भी अविकसित अथवा अर्द्ध विकसित राष्ट्र के लिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दुर्लभ हो ग
भारत ऐसे ही पिछडे हुये राष्ट्रो मे गिना जाता था। स्वतन्त्र होने पर हमे
आर्थिक उन्नति एव व्यापारिक विकास और विस्तार की आवश्यकता प्रतीत
अतएव द्विपक्षीय व्यापारिक समझौतो की शरण लेनी पडी। इन समझौतो के अन्त
दोनो देशो को वचन-बद्ध होकर एक दूसरे को व्यापारिक सुविधायें देना आवश्
होता है। इन समझौतो से दोनो देशो के बीच निकट सम्बन्ध स्थापित हो जाता है
दोनो के व्यापारिक विकास के लिये आवश्यक है।

ये समझौते उच्च स्तरीय वार्ता द्वारा किये जाते हैं। बहुधा उन देशों
राजदूतो से यह वार्ता होती है जिनके साथ समझौता करना है। ये अधिकारी
देश की भारत सम्बन्धित नीति निर्माण के लिये पूर्णतः उत्तरदायी होते हैं। दोनो
एक-दूसरे की व्यापार नीति, नियमो एव नियन्त्रणो को भलीभाँति समझकर सम
की शर्तें तय करते हैं। दोनो देश एक-दूसरे की समस्याओ का आदर करते
स्वतन्त्रता से पूर्व बहुत कम देशो से हमारा सीधा सम्बन्ध था। इन समझौतो
द्वारा हमने अनेक देशो के साथ सम्पर्क स्थापित किया है। जिनके साथ पहले से
सम्पर्क था उनके साथ सम्पर्क बढाया है। विविध प्रकार के निर्यात द्वारा सुलभ
राष्ट्रो के साथ व्यापार वृद्धि करके भारत ने इन्ही समझौतो के द्वारा अपनी डालर
समस्या को सुलझाया है।

भारत को इन समझौतो के द्वारा अपने नये माल और नवीन वस्तुओ
निर्यात का अवसर प्राप्त हुआ है। अतएव जिन देशो के साथ पिछले वर्षो मे समझ
हुये थे उनकी अवधि बढाई जाती रही है और नये देशो के साथ नये समझौते कि
गये हैं।

द्विपक्षीय समझौतो द्वारा भारत ने अनेक देशो के साथ रुपये-खाते खोलक
अपनी भुगतान सम्बन्धी कठिनाइयो को कम किया है। लगभग १२ देशो के सा
हुये समझौतो मे आयात-निर्यात का मूल्य रुपये मे चुकता करने का विधान किया ग
है। हमारे व्यापारियो को न तो विदेशी सिक्के का, न वहाँ के महाजनी (Bankin
सिद्धान्तो का ही कोई अनुभव है। अतएव ये समझौते और उनके अन्तर्गत खोले

रुपये खाते उनके बड़े काम के है। उन देशों के राजकीय बैंक भारत के रिजर्व बैंक में एक खाता खोल लेते हैं। इसी खाते के द्वारा आयात-निर्यात का हिसाब चुकता किया जाता है।

इन समझौतों के अन्तर्गत भारत ने अनेक देशों को व्यापारिक छूटें दी हैं और बदले में अनेक छूटें दूसरे देशों से भी प्राप्त की हैं। उदाहरणार्थ, आयात निर्यात नियन्त्रण के निमित्त भारत सरकार यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन (O.E E.C.) के सभी देशों को सुलभ-मुद्रा क्षेत्र मानती है। इसके बदले में इन देशों के साथ हुये समझौता में यह उल्लेख किया जाता है कि ये देश भारतीय आयात के सम्बन्ध में वे सब सुविधायें और छूट देंगे जो सदस्य देशों को देते है।

इन समझौतों के अन्तर्गत कुछ देश भारत को विलम्बित भुगतान (Deferred Payment) द्वारा माल देने को भी सहमत हो गये हैं।

भारत की स्वतन्त्रता के समय से जो कुछ व्यापारिक उन्नति हुई है उसका एक महत्वपूर्ण कारण ये समझौते हैं। इस समय २६ देशों के साथ ये समझौते चालू हैं।

अध्याय ११

व्यापारिक वित्त-व्यवस्था

(Financing of Trade)

Q. 38. What are the functions of various middlemen who participate in the organisation and financing of India's internal trade? Are there any defects in them? How would you remove them.

(Agra, 1960 & Luck., 1953)

भारत के आन्तरिक व्यापार के संगठन तथा अर्थ-व्यवस्था में जो-जो मध्यस्थ काम करते हैं उनके कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिये। क्या उनमें कोई दोष हैं? आप उन्हें कैसे दूर करेंगे?

भारतीय उपज अथवा निर्मित वस्तुएँ सामान्यतः तीन वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं: (१) कारखानों में निर्मित वस्तुएँ अथवा बड़े पैमाने के उत्पादन, (२) कुटीर एवं लघु उद्योगों की बनी वस्तुएँ, (३) कृषि उपज, जिसमें मुख्यतः औद्योगिक कच्चे पदार्थ एवं खाद्यान्न सम्मिलित हैं।

बड़े उद्योगों के मध्यस्थ एवं वित्त-व्यवस्था—

बड़े नगरों और बड़े कारखानों की बनी वस्तुएँ दलालों द्वारा थोक व्यापारियों के पास पहुँचती हैं। थोक व्यापारियों से नगरों में स्थित अनेक फुटकर व्यापारी इन वस्तुओं का क्रय कर लेते हैं। ये छोटे व्यापारी प्रत्येक नगर के मोहल्लों एवं गाँवों में भी फैले रहते हैं। अपनी बिक्री के अनुसार थोक व्यापारियों से ये लोग माल लेकर उपभोक्ताओं को बेचते रहते हैं। इस क्षेत्र में कार्य करने वाले मुख्य मध्यस्थ आढ़तिये, थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी होते हैं। ये लोग उत्पादक और उपभोक्ता को परस्पर सम्पर्क में लाकर माल क्रय-विक्रय के लिये उत्तरदायी हैं। कभी-कभी इनको परस्पर एक-दूसरे के सम्पर्क में आने के लिए अनेक प्रकार के दलालों की भी आवश्यकता होती है।

ये मध्यस्थ बहुधा बड़े नगरों में होते हैं, जहाँ पर इन्हें वित्तीय सम्बन्धी विविध सुविधायें उपलब्ध हैं: (१) सर्राफ, महाजन अथवा देशी बैंक; (२) व्यापारिक बैंक (जिनमें राजकीय बैंक भी सम्मिलित हैं); (३) रिजर्व बैंक; (४) व्यापार संघ;

(५) निर्यातिकर्त्ता। ये संस्थाएं ऋण देकर, विनिमय-पत्र भुनाकर, अथवा अन्य प्रकार से व्यापार सम्बन्धी आर्थिक अभावों की पूर्ति करती हैं।

लघु उद्योगों एवं कृषि उपज सम्बन्धी मध्यस्थ एव अर्थ-व्यवस्था—

कृषि उपज और छोटे उद्योगों की बनी वस्तुएं लगभग एक ही प्रकार संग्रह एवं वितरित होती हैं। इन वस्तुओं को बहुधा गाँवों में स्थित छोटे व्यापारी मोल ले लेते हैं। कभी-कभी ग्रामीण साहूकार, भूमिधर अथवा महाजन भी ये कार्य करते हैं। ये लोग इस माल को निकटवर्ती नगर में स्थित आढतियों को बेच आते हैं; जिनसे यह माल थोक व्यापारियों के हाथ लगता है। थोक व्यापारियों से ये वस्तुएँ फुटकर व्यापारियों अथवा निर्यातिकर्त्ताओं के हाथ लगती है। इस माल का एक भाग फुटकर व्यापारियों से उपभोक्ता के पास चला जाता है और दूसरा भाग (जो निर्यात के लिए होता है) विदेश चला जाता है।

इस क्षेत्र के मुख्य मध्यस्थ—

(१) ग्रामीण बनिया, साहूकार, भूमिधर अथवा महाजन, (२) आढतिया, (३) दलाल, (४) थोक व्यापारी, (५) फुटकर व्यापारी अथवा निर्यातिकर्त्ता। ग्रामीण क्षेत्र में स्थित व्यापारियों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसका एक बड़ा कारण उनके सीमित साधन एव सीमित साख है। इन लोगों को आर्थिक सहायता प्रदान करने वाली मुख्य संस्थायें: (१) ग्रामीण बनिया, साहूकार, भूमिधर अथवा महाजन (२) आढतिया (३) सर्राफ अथवा देशी बैंक (४) व्यापारिक बैंक (५) सहकारी समितियां (६) निर्यातिकर्त्ता इत्यादि हैं।

(१) ग्रामीण बनिया, साहूकार, भूमिधर अथवा महाजन—

ये शब्द बहुधा पर्यायवाची समझे जाते हैं और ग्रामीण व्यापारी का बोध कराते हैं। ये लोग व्यापार के साथ-साथ रुपये का लेन-देन भी करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में इनका विशेष महत्व है। कृषि उपज एवं छोटे उद्योगों की वस्तुओं के संग्रह और बिक्री में इनका सर्वोपरि भाग है। उत्पादकों एवं किसानों की अर्थ पूर्ति में भी इन्हीं का प्रमुख हाथ होता है। सरसों के क्रय-विक्रय में ६७ प्रतिशत, घी में ३३%, अलसी में ४०% और चावल के व्यापार में इनका १५% भाग आँका गया है। ये लोग किसान को व्यक्तिगत साख के अनुसार उन्हें रुपया उधार देते हैं, जो फसल आने पर उसे चुकाना पड़ता है। ऋणी के व्यवहार के अनुसार ब्याज की दर १२ से ३७ प्रतिशत तक घटती-बढ़ती रहती है। नकदी ऋण के अतिरिक्त जिन्स (Kind) में भी ऋण दिये जाते हैं। जिन्स सम्बन्धी ऋणों में सवाई और ड्योढ़ी प्रथाओं का चलन है, जिनमें ब्याज की दर २५ और ५० प्रतिशत होती है। ऋण, चाहे नकद हो अथवा जिन्स के रूप में, बहुधा जिन्स में ही उसका भुगतान करना होता है और उसी समय माल के भाव का भी सौदा कर लिया जाता है। बाजार भाव चाहे जो कुछ हो, उत्पादक

अथवा किसान निश्चित दर के अनुसार अपना माल उसे देने के लिये बाध्य होता है। कठिनाई के समय ये लोग किसान अथवा उत्पादक की सहायता करते है; अतएव निश्चित भाव बहुधा किसान के प्रतिकूल और व्यापारी के अनुकूल होता है। बहुधा ये लोग माल लेने और देने में चालाकी चलते है और किसान को धोखा देते हैं। लेते समय अधिक और देते समय कम तोल कर किसान को १० से १२ प्रतिशत तक की हानि पहुँचाते हैं।

(२) आढ़तिया—

ग्रामीण व्यापारी उस क्षेत्र की उपज निकटवर्ती मण्डी अथवा नगर में स्थित आढतिया के पास लाता है। आढतिये दो प्रकार के होते हैं: (१) कच्चा, (२) पक्का। कच्चे आढतिये छोटे व्यापारी होते हैं, उनका कार्य-क्षेत्र सीमित होता है। कभी-कभी उनका व्यापार भी अस्थाई होता है। इसके विपरीत, पक्के आढतिये बड़े व्यापारी होते है; इनका जमा हुआ और स्थाई काम होता है। बहुधा ये धनी लोग होते हैं। पक्के आढतिये बहुधा निजी धन से व्यापार करते हैं, कच्चे आढतियो को परिचित व्यक्तियो, सम्बन्धियो अथवा महाजनी संस्थाओ से भी धन लेना पड़ता है। बहुधा दोनो ही प्रकार के आढतिये साझेदारी संस्थाएँ होती है।

ये लोग गाँवो से आई हुई उपज की बिक्री का प्रबन्ध करते हैं। पक्के आढतिये स्वयं माल को मोल ले लेते हैं और उसे फुटकर व्यापारियो के हाथ बेचते रहते है। कच्चे आढतिये केवल क्रेता और विक्रेता को सम्पर्क में लाकर उपज की बिक्री के लिये उत्तरदायी होते हैं। भाव अनुकूल न होने पर माल को हफ्ते दो हफ्ते के लिए अपने गोदाम मे रख लेते है और विक्रेता को उसके मूल्य के ७० अथवा ७५% के बराबर रुपया दे देते हैं। भाव अनुकूल होने पर माल बेच कर उसका पूरा हिसाब चुकता कर दिया जाता है।

ग्रामीण व्यापारी अथवा किसान को आढतिए लोग आवश्यकतानुसार धन उधार देते हैं। इस धन की सहायता से ग्रामीण व्यापारी उत्पादक से माल खरीदता है। यह रुपया ऋणी की व्यक्तिगत साख के ऊपर दिया जाता है। पारस्परिक सम्बन्धो और विश्वास पर रुपए की मात्रा, ब्याज की दर तथा ऋण चुकता करने की अवधि इत्यादि बातें निर्भर होती हैं। सामान्यतः ब्याज की दर ९ से १२ प्रतिशत तक होती है। नगर के ये व्यापारी बहुधा निजी धन से व्यापार करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर सर्राफो, आधुनिक व्यापारिक बैंको, एव अन्य वित्तीय संस्थाओ से धन उधार लेते है। यह धन बहुधा मुद्दती हुन्डी, चल-पत्र व विनिमय-पत्र के द्वारा लिया जाता है। कभी-कभी छोटे व्यापारियो की हुन्डियाँ व विनिमय-पत्र भुनाकर भी ये वित्तीय सुविधायें प्रदान करते है। ब्याज की दर बाजार की स्थिति के अनुसार ६ से १२ प्रतिशत तक होती है।

माल के ऊपर रुपया उधार देने के अतिरिक्त *विनिमय-पत्र अथवा हुन्डियाँ भुनाकर भी बैंक आर्थिक सहायता देते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान को रुपया भेजने की सेवा भी की जाती है। ऐसे बैंक केवल बड़े नगरों और बाजारों में स्थित होते हैं। छोटे संग्रह केन्द्रों और मण्डियों में उनकी सेवा उपलब्ध नहीं है।*

राजकीय बैंक भी वाणिज्य बैंकों की भाँति व्यापार की वित्त व्यवस्था में योग देता है। देश भर में इसकी शाखाएँ और दफ्तर फैले हुये हैं, जिससे नगर में *स्थित व्यापारी वर्ग के लिये इसका विशेष महत्व है।*

(५) सहकारी संस्थायें

देश के भिन्न-भिन्न भागों में कृषि उपज के संग्रह तथा विक्री के लिये कई *प्रकार की सहकारी समितियाँ स्थापित हो गई हैं।* बिहार में चावल, मध्यप्रदेश में रुई, बंगाल में धान तथा बम्बई में अलसी के व्यापार से सम्बन्धित सहकारी समितियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। बिहार और उड़ीसा में अन्न और बीज सम्बन्धी सहकारी समितियाँ हैं, जिन्हे 'गोल' अथवा 'अन्न गोल' कहते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को अन्न ऋण बहुधा बीज के लिये देना होता है। कभी-कभी सीमित मात्रा में नकद ऋण भी दिये जाते हैं। ये समितियां ६ से १२½ प्रतिशत ब्याज दर पर सदस्यों की साख के अनुसार ऋण देती हैं। देश के कुछ भागों में घी के व्यापार से सम्बन्धित *सहकारी समितियाँ बन गई हैं, जो सदस्यों को आर्थिक सहायता देती हैं।*

मद्रास प्रान्त में कुछ क्रय-विक्रय सहकारी संघ इस क्षेत्र में काम करते हैं। सदस्यों की उपज की विक्री का प्रबन्ध करना, गोदाम बनवाना, सदस्यों के प्रतिनिधि *एवं सूचना केन्द्र का काम करना एवं सदस्य समितियों के कार्य का सूत्रीकरण करना* इनके मुख्य उद्देश्य हैं। कभी-कभी उपभोग और निर्यात के लिये खाद्यान्न का संग्रह भी ये समितियाँ करती हैं।

योजना काल में क्रय-विक्रय सहकारी समितियों की संख्या बढ़ाने का विशेष यत्न किया गया है।

(६) निर्यातकर्त्ता

बन्दरगाहों में स्थित निर्यातकर्त्ता नगरों के आढ़तियों अथवा थोक व्यापारियों से माल लेते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें आर्थिक सहायता भी प्रदान करते हैं। रेल की बिल्टी अथवा माल के आने पर उसके मूल्य के ७० से ६० प्रतिशत तक वे अग्रिम धन दे देते हैं। बहुधा ये निर्यातकर्त्ता देश के आन्तरिक भागों से अपने प्रति-*निधियों द्वारा माल लेते हैं। बहुधा तार द्वारा अथवा देश के आन्तरिक भागों में स्थित* शाखाओं के नाम विनिमय-पत्र लिखकर रुपया प्रेषित किया जाता है। कुछ निर्यात कर्त्ताओं के अपने कार्यालय विदेशों में भी स्थित होते हैं। ऐसी स्थिति में विदेशी विनिमय-पत्रों द्वारा धन दिया जाता है।

शेष—

भारत के आन्तरिक व्यापार की वित्त-व्यवस्था के लिये ग्रामीण व्यापारी अथवा महाजन उत्तरदायी हैं। किसान के ऋण का ७० प्रतिशत इनसे प्राप्त होता है। महाजन से प्राप्त होने वाले ७० प्रतिशत का ५८ प्रतिशत ग्रामीण साहूकार देता है। ग्रामीण क्षेत्र में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। रुपया देने का ढंग सादा होता है तो भी यह व्यवस्था दोषपूर्ण है। (क) ऊँची ब्याज की दर इसका सबसे बड़ा दोष है। यह दर १२ से ५० प्रतिशत तक होती है। (ख) इसका दूसरा दोष तोल सम्बन्धी गड़बड़ी है। देते समय कम और लेते समय अधिक तोला जाता है, जिससे उत्पादक को १० से १२ प्रतिशत तक की हानि होती है। (ग) ये लेन-देन बहुधा जिन्स के रूप में होते हैं। ऋण देते समय ही भाव तय कर लिये जाते हैं, जिससे किसान को नुकसान होता है, क्योंकि भाव ऐसा निश्चय किया जाता है जो कि सदैव किसान के प्रतिकूल और ऋण-दाता के अनुकूल होता है। जिन्स के रूप में ऋण भुगतान करने की असमर्थता दिखाने पर ऋणी से ऊँची ब्याज की दर (३७½ से ७५ प्रतिशत) लगाई जाती है।

सहकारी समितियों की स्थापना द्वारा ग्रामीण जनता को इनसे छुटकारा मिल सकता है। गत वर्षों में कानून द्वारा महाजन की क्रिया को नियमन करने का यत्न किया गया है, किन्तु व्यवहार में इन नियमों का बहुधा पालन नहीं किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में व्यापारिक बैंकों की शाखायें-प्रशाखायें खोलने से ग्रामवासियों को महाजन के चंगुल से बचाया जा सकता है।

शहर अथवा मंडी में आढ़तिये लोग वित्त-व्यवस्था के लिये उत्तरदायी हैं। ये व्यापारी गाँव के व्यापारी अथवा किसान की आर्थिक सहायता करते हैं। इनके लेन-देन का ढंग भी गाँव के महाजन से अधिक भिन्न नहीं है। आर्थिक सहायता देते समय बहुधा भाव निश्चित कर लिया जाता है, जिससे ऋणी की स्वतन्त्रता का सर्वथा अपहरण हो जाता है। ये लोग बहुधा क्रेता और विक्रेता के बीच में दलाल का काम करते हैं। क्रेता कोई परिचित थोक व्यापारी होता है। इससे मिलकर विक्रेता की उपज का गुप्त रीति से भाव करते हैं। इस सौदे में विक्रेता को कोई स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। कभी कभी तोल में भी विक्रेता के साथ धोखा किया जाता है। भारी कटौती और कई प्रकार के व्यय भी विक्रेता से लिये जाते हैं। प्याऊ, धर्मशाला, रामलीला, गौशाला, मन्दिर, अनाथालय, तुलाई, सेवा समिति, पल्लेदारी, सफाई, दलाली इत्यादि विविध प्रकार के व्यय माल के मूल्य में से काट लिये जाते हैं। इसका एकमात्र इलाज नियन्त्रित बाजारों की स्थापना है। ग्रामीण क्षेत्र में सहकारी समितियाँ स्थापित होने और गोदाम बनने से भी उत्पादक को इस व्यवस्था से छुटकारा मिल सकता है, क्योंकि समितियाँ थोक व्यापारियों के साथ सीधा व्यापार कर सकती हैं।

अध्याय १२

व्यापार सन्तुलन

(Trade Balance)

Q. 39. What do you understand by the term favourable trade ? Why does a country like this trade ?

अनुकूल व्यापार (favourable trade) से आप क्या समझते हैं ? कोई देश क्यों ऐसे व्यापार को अच्छा समझता है ?

आयात से निर्यात का आधिक्य अनुकूल व्यापार कहा जाता है। कारण यह है कि निर्यात अधिक होने से देश को सोना, चांदी अथवा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं व्यापारिक अन्तर के बराबर मिलती हैं। सोने का आयात देश की अनुकूल आर्थिक स्थिति का सूचक समझा जाता है। क्योंकि सोना देश की मुद्रा और वस्तुओं के मूल्य में स्थिरता लाता है। मुद्रा और वस्तुओं के मूल्य का उतार-चढ़ाव व्यापारिक एवं औद्योगिक उन्नति के लिए हानिकारक समझा जाता है।

प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि जिस देश में सोने की पर्याप्त खानें नहीं हैं वह देश निर्यात बढ़ा कर ही सोने और सिक्के का संचय कर सकता है। लोगों का यह विश्वास था कि बिना सोने और सिक्के के सचय के प्राचीन काल में कोई देश न तो युद्ध में ही विजयी हो सकता था और न किसी सकटापन्न स्थिति से छुटकारा पा सकता था। इस भांति अनुकूल व्यापार एक राजनीतिक और सैनिक आवश्यकता समझी जाती थी।

आजकल निर्यात अधिक होना देश की औद्योगिक एवं आर्थिक समृद्धि का सूचक समझा जाता है। इससे देश में काम के साधन बढ़ते हैं। आजकल सभी देश पूर्ण रोजगार के सिद्धान्त को मानते हैं। इस भांति अनुकूल व्यापार का सिद्धान्त औद्योगिक रक्षण का साधन माना जाने लगा है।

Q. 40. Distinguish between balance of trade and balance of payment.

व्यापार संतुलन (balance of trade) और भुगतान संतुलन (balance of payment) में अन्तर बताइये ?

आधुनिक युग मे विश्व के विभिन्न देशो मे माल का ही आदान प्रदान नही होता वरन् स्वर्ण का, सेवाओ का और पूंजी का भी लेन-देन होता है। एक देश का विश्व के सभी देशो अथवा किसी देश विशेष के साथ आयात-निर्यात के अन्तर को व्यापार-संतुलन कहा जाता है। यदि आयात और निर्यात बराबर हो तो उस देश के व्यापार को सतुलित व्यापार कहते है। यदि निर्यात अधिक और आयात कम हो तो अनुकूल व्यापार कहा जायगा यदि स्थिति इसके विपरीत हो अर्थात निर्यात से आयात अधिक हो तो ऐसे व्यापार को प्रतिकूल व्यापार कहा जाता है।

वस्तुतः माल के लेन-देन को हिसाब मे लेने से किसी देश के व्यापार की यथार्थ स्थिति ज्ञात नही होती। एक देश के माल का लेन-देन देखकर उसका व्यापार अनुकूल हो सकता है, किन्तु अन्य सभी प्रकार के लेन-देनो को हिसाब में लेने के उपरान्त वह ऋणी राष्ट्र हो सकता है अर्थात भुगतान सतुलन उसके विपक्ष मे हो सकता है। इसके विपरीत स्थिति का भी सहज अनुमान लगाया जा सकता है। आधुनिक युग में ऐसे अनेक देश हैं जिनके माल के आयात-निर्यात की अपेक्षा सोने, सेवाओ एवं पूंजी का आयात-निर्यात अधिक होता है। अतएव आज के युग मे किसी भी देश की व्यापारिक स्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान तभी हो सकता है जब हर प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय लेन देनो को हिसाब मे ले लिया जाय। सभी प्रकार के लेन देनो को हिसाब में लेने के उपरान्त जो खाता बनाया जाता है उसमे किसी देश के ऋणी अथवा ऋणदाता होने का पता चलता है। यदि यह खाता सतुलित स्थिति प्रदर्शित करता है तो उसका अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान सतुलित हुआ समझा जाता है। यदि यह खाता धन चिन्ह (+) द्वारा शेष प्रदर्शित करता है तो भुगतान उस देश के पक्ष मे समझा जाता है अर्थात् उस देश को उतनी धनराशि किसी न किसी भांति अन्य सभी देशो से प्राप्त करनी शेष है। इसके विपरीत यदि उक्त खाता ऋण-चिन्ह (—) से प्रदर्शित होता है तो इसका तात्पर्य यह है कि उस देश को अन्य सभी देशों को उक्त धन राशि देनी है अर्थात् भुगतान उस सीमा तक प्रतिकूल है।

संक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि भुगतान संतुलन एक देश के निवासियो और दूसरे सब देशो के निवासियों के बीच होने वाले सम्पूर्ण आर्थिक व्यवहारो का एक विधिवत् रखा हुआ लेखा है।

आयात-निर्यात व्यापार से सम्बन्धित सन्तुलन के लिए किसी विशेष प्रकार के खाते बनाने की आवश्यकता नहीं पडती। केवल दोनो का अन्तर निकाल लिया जाता है। भुगतान-सन्तुलन सम्बन्धी हिसाब लगाना कुछ कठिन कार्य है। इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय-मुद्रा कोष ने एक विशेष युक्ति बताई है। सभी देश भुगतान-सन्तुलन का

हिसाब इसी के अनुसार बनाते हैं। इस अन्तर्राष्ट्रीय ढंग से हिसाब बनाने के लिए दो खाते खोले जाते है : (१) चालू खाता, (२) पूँजी खाता। इन खातों को बनाने के लिए सारे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहारों को तीन वर्गों में बाँटा जाता है :— (क) माल और सेवायें, (ख) दान-भेंट, (ग) विनियोग एवं द्रव्य सम्बन्धी स्वर्ण। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत माल का आयात-निर्यात और पुनर्निर्यात, पर्यटन, परिवहन, बीमा, ब्याज इत्यादि मद सम्मिलित रहते हैं। इनमे से प्रथम और द्वितीय वर्ग के लेन-देन एक खाते मे दिखाये जाते हैं, जिसे चालू खाता कहते हैं। तृतीय वर्ग के व्यवहार एक दूसरे खाते मे दिखाये जाते हैं, जिसे पूँजी खाता कहते हैं। इन खातों में विदेशी विनिमय की प्राप्ति (Receipts) धन चिन्ह द्वारा और भुगतान (Payment) ऋण-चिन्ह द्वारा प्रदर्शित किए जाते है। दोनों खातो में सब व्यवहारो को इस भांति लिख लेने के उपरान्त धन और ऋण के चिन्ह परस्पर एक-दूसरे को काट देते हैं। यदि हिसाब इस प्रकार नहीं कटता तो जो अन्तर होगा वह भूल-चूक के कारण होगा। ये सारे व्यवहार अनुमान पर आधारित होते हैं। अतएव थोड़ी-बहुत भूल रहना स्वाभाविक है।

Q 41. What are the reasons of unfavourable trade in india during the post-war period ? How India has tried to improve the situation ?

युद्धोत्तरकाल में भारत के प्रतिकूल व्यापार के क्या कारण हैं ? किस भाँति भारत ने अपनी स्थिति सभालने के प्रयत्न किये हैं ?

अनन्त काल से भारत का व्यापार सदैव उसके अनुकूल रहता था। द्वितीय युद्धकाल मे स्थिति सर्वथा बदल गयी और सन् १६४४-४५ में हमारा व्यापार हमारे प्रतिकूल चला गया। अनेक यत्नों के उपरान्त भी हम इस स्थिति को बदलने मे असमर्थ रहे हैं। वस्तुतः युद्धोत्तर काल मे हमारे व्यापार के स्वरूप में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा व्यापार अब कभी हमारे अनुकूल न हो सकेगा। इस भाँति हमारे व्यापार के अपने प्रतिकूल होने और व्यापारिक घाटे के उत्तरोत्तर बढने के अनेक कारण हैं :—

(१) खाद्य समस्या और खाद्यान्न की बड़ी मात्रा में आयात हमारे प्रतिकूल व्यापार का एक मुख्य कारण है। सन् १६४८ में २८ लाख टन अन्न विदेश से हमने मँगाया। सन् १६५१ मे इसकी मात्रा ४७ लाख टन हो गई। प्रथम पचवर्षीय योजना-काल मे स्थिति में कुछ सुधार हुआ और सन् १६५५ में केवल ७ लाख टन अन्न बाहर से आया। इसके उपरान्त स्थिति फिर बिगड़ गई। सन् १६५७ मे ३६ लाख टन और सन् १६५८ मे ३२ लाख टन आयात किया गया। इस भाँति अब भी हमे लगभग ३० लाख टन अन्न विदेश से आयात करना पड़ता है, जिसके लिये हमें १०० करोड़ रुपये विदेशों को देने पड़ते हैं।

(२) देश का विभाजन हमारे व्यापार को प्रतिकूल बनाने का दूसरा बड़ा कारण है। जूट के उत्पादन का सारा क्षेत्र और बड़े रेशे की रुई के उत्पादन का बड़ा क्षेत्र पाकिस्तान के पास चला गया। अतएव जूट और रुई का आयात भी इसके लिये कुछ सीमा तक उत्तरदायी है।

(३) मशीनों का अधिकाधिक आयात इसका तीसरा बड़ा कारण है। गत वर्षों में देश में औद्योगीकरण की अनेक योजनायें बनाई गई हैं, जिनकी सफलता के लिये अधिकाधिक मशीनों का आयात आवश्यक हो गया है। सन् १९५७ में २३३ करोड़ रुपये के मूल्य की मशीनें आयात की गई हैं। यद्यपि मशीन निर्माण को देश में विशेष महत्व दिया जा रहा है तो भी सन् १९५९ में इस आयात का मूल्य १९९ करोड़ रुपये था। अभी कुछ वर्ष तक स्थिति ऐसी ही बनी रहने की सम्भावना है।

(४) गत वर्षों में परिवहन के साधनों की विशेष उन्नति हुई है। बढ़ते हुये उत्पादन के वितरण के लिये यह उन्नति आवश्यक भी है। अतएव परिवहन उपकरणों का आयात भी प्रति वर्ष एक बड़ी मात्रा में आवश्यक हो गया है। सन् १९५७ में इस आयात का मूल्य ७६ करोड़ रुपये और सन् १९५९ में ७० करोड़ रुपये था। कुछ वर्ष स्थिति ऐसी ही बनी रहेगी।

(५) देश के औद्योगीकरण की सफलता और परिवहन के विकास के लिये अधिकाधिक मात्रा में खनिज तेल का आयात भी हमारी प्रतिकूल व्यापारिक स्थिति का एक बड़ा कारण है। सन् १९५७ में १०८ करोड़ रुपये के खनिज तेल आयात किये गये। क्योंकि देश में कई तेल शोधन शालायें खोली गयी। तदुपरान्त स्थिति में कुछ सुधार हुआ और सन् १९५९ में ७८ करोड़ रुपये का खनिज तेल आयात किया गया। अब देश में कई स्थानों पर खनिज तेल की सम्भावनाओं का पता लगा है। यदि इस खोज कार्य में हम सफल हुये तो धीरे धीरे यह आयात कम हो सकता है, किन्तु शीघ्र ऐसी स्थिति आने वाली नहीं है।

धातु पदार्थों और रसायनिक वस्तुओं का बड़ी मात्रा में आयात भी हमारे व्यापार को असंतुलित करने में सहायक हुआ है।

(६) यद्यपि स्वतन्त्रता के समय से देश ने निर्यात बढ़ाने के अनेक यत्न किये हैं तो भी इन यत्नों में वाञ्छनीय सफलता नहीं मिल सकी। विदेशी बाजारों में अन्य निर्यातकों की प्रतियोगिता, हमारे माल का ऊँचा मूल्य स्तर एवं निम्नकोटि तथा प्रचारकार्य की शिथिलता ऐसे कई कारण हैं जिन्होंने हमारे यत्नों को विफल बना दिया है। अतएव हमारी कई परम्परागत वस्तुओं का निर्यात कम हो गया है, जिससे हमारे व्यापारिक घाटे में और भी वृद्धि हुई है।

इन सब कारणों का सम्मिलित प्रभाव हमारे व्यापारिक घाटे को बढ़ाना रहा है। सन् १९४४-४५ में केवल ३ करोड़ रुपये से हमारा व्यापार प्रतिकूल था। सन्

१९५१-५२ में लगभग २२२ करोड़ रुपए में प्रतिकूल हो गया तथा सन् १९५७-५८ में ३७८ करोड़ रुपये में प्रतिकूल रहा। इस घाटे को कम करने के लिये एक ओर आयात को सीमित करने और दूसरी ओर निर्यात को बढ़ाने के यत्न किये गये हैं। सन् १९५७ में कड़ी आयात नीति का पालन किया गया है। इसी भाँति सन् १९५० में निर्यात को बढ़ाने के विशेष यत्न किये जाते रहे है। सम्भवतः इन्हीं यत्नों के कारण सन् १९५९ में व्यापारिक घाटे में कुछ कमी हुई, जो केवल २४३ करोड़ रुपये था। हमारे खाद्य मन्त्री ने यह आशा व्यक्त की है कि तृतीय योजना के अन्त तक देश खाद्यान्न में स्वावलम्बी हो जायगा। आयात की अन्य महत्वपूर्ण वस्तुओं (परिवहन उपकरण, खनिज तल, मशीनें, रसायनिक पदार्थ, धातुये इत्यादि) जिन्होंने हमारे व्यापारिक घाटे को बढ़ाने में योग दिया है, का उत्पादन देश में बढ़ाने के भरसक यत्न किये जा रहे हैं।

Q. 42. The most significant feature of our last two years foreign trade has been the sharp rise in the adverse trade balance. Enumerate the main casues for the same

(Agra, 1958)

हमारे विदेशी व्यापार की गत दो वर्षों की महत्वपूर्ण घटना हमारे व्यापारिक घाटे में अपार वृद्धि है। इस वृद्धि के मुख्य कारण बताइये।

हमारा व्यापार सन् १९४४-४५ में हमारे प्रतिकूल चला गया था और व्यापारिक घाटा प्रति वर्ष बढ़ने लगा था। सन् १९५१-५२ में पूर्व वर्षों की अपेक्षा यह एक उच्चतम सीमा को पहुँच गया था, जब कि यह २२२ करोड़ रुपये था। इसका मुख्य कारण कोरियाई युद्ध-जनित परिस्थितियाँ बताई जाती थी। इन परिस्थितियों के बदलने और हमारे विविध यत्नों के कारण हमारा व्यापारिक घाटा तदोपरान्त कम होने लगा और सन् १९५५-५६ में केवल ६५ करोड़ रुपए का घाटा हमें हुआ। द्वितीय योजना में औद्योगीकरण को विशेष महत्व देने के कारण मशीनों इत्यादि का आयात अधिक बढ़ता गया और स्थिति बिगड़ने लगी। इसी समय हमारी खाद्यान्न स्थिति भी फिर से बिगड़ गयी। अतएव सन् १९५६-५७ के उपरान्त हमारे व्यापारिक घाटे में पहले से भी अधिक तेजी से वृद्धि हुई और सन् १९५७-५८ में यह घाटा ३७८ करोड़ रुपये हो गया। गत वर्षों में जिन कारणों से इस घाटे में वृद्धि हुई है उनका विवरण प्रश्न संख्या ४१ में दिया जा चुका है।

अध्याय १३

राजकीय व्यापार

(State Trading)

Q. 43. What do you understand by 'state trading'? What is the policy of the state with regard to it? (Agra, 1957)

राजकीय व्यापार से आप क्या समझते हैं ? भारत सरकार की इस सम्बन्ध में क्या नीति है ?

सैद्धान्तिक दृष्टि से व्यापारिक क्रिया सरकारी उत्तरदायित्व नहीं है, किन्तु आज के लोक कल्याणकारी शासन में लोकहित का कोई भी काम सरकार उठा सकती है। अतएव सरकार द्वारा माल और वस्तुओं का संचय-वितरण, आयात-निर्यात अथवा क्रय-विक्रय सरकारी अथवा राजकीय व्यापार कहा जाता है। सरकार बहुधा तीन प्रकार से व्यापार कर सकती है : (क) देश के अन्तर्गत माल एवं वस्तुओं का संचय व वितरण, (ख) विदेश से माल और वस्तुओं का आयात कर लाभ पर उन्हें देश में बेचना अथवा देशी माल संचय करके निर्यात करना, (ग) सरकारी उपभोग के निमित्त भण्डार संचय अथवा आयात करना और बचे हुए भण्डार को बेच देना।

सामान्यतः सरकारी व्यापार का संकुचित अर्थ केवल सरकार द्वारा आयात-निर्यात व्यापार में हाथ डालने तक सीमित समझा जाता है। साम्यवादी देशों को छोड़कर अन्य जनमतात्मक देशों में व्यापार का पूर्ण राष्ट्रीयकरण सम्भव नहीं है; सरकार केवल आंशिक सेवा प्रदान करती है, जो कुछ गिनी-चुनी वस्तुओं के आयात-निर्यात एवं वितरण से सम्बन्धित होती है। फ्रांस, जापान एवं इटली में केवल तम्बाकू का व्यापार सरकारी एकाधिकार में है; ब्रिटेन में खाद्यान्न और कच्चे पदार्थ सरकारी व्यापार के क्षेत्र हैं; संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की वस्तु साख निगम (Commodity Credit Corporation) का कार्य कृषिजन्य पदार्थों का मूल्य उचित सीमा पर बनाए रखना मात्र है।

भारत सरकार ने आन्तरिक और विदेशी व्यापार दोनों ही क्षेत्रों में आंशिक सेवा प्रारम्भ की है। जो माल सरकारी संस्थायें मंगाती हैं, देश में उसका वितरण भी सरकारी संस्थाओं द्वारा ही उचित समझा जाता है। सर्व प्रथम द्वितीय युद्धकाल में

भारत सरकार ने खाद्यान्न का आयात प्रारम्भ किया था। उसका वितरण भी सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त दुकानदारों द्वारा होता था। प्रथम योजनाकाल में कुछ समय के लिए खाद्यान्नों के मूल्य बहुत गिरने लगे। उन्हें उचित स्तर पर बनाए रखने के निमित्त सरकार ने खाद्यान्न मोल लेना प्रारम्भ कर दिया। इसी भाँति १९५७ से खाद्यान्न के मूल्य बढने लगे और सन् १९५८ मे औचित्य की सीमा के ऊपर चले गए। अतएव सरकार को खाद्यान्न के व्यापार का एक भाग अपने हाथ मे लेना पडा। विदेश से आयात करने के अतिरिक्त, सरकार देश के अन्तर्गत भी खाद्यान्न संग्रह करने लगी, जिसका वितरण सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त दुकानदारों (Fair Price Shops) द्वारा किया जाने लगा। सन् १९५६ से देश मे यही व्यवस्था जारी है।

युद्धोत्तरकाल मे विशेषतः स्वतन्त्रता के उपरान्त भारतीय व्यापार का विकास द्विदेशीय समझौतों के अन्तर्गत हुआ है। ये समझौते दो सरकारों के बीच में होते हैं। अतएव ऐसे समझौतों के अनुसार व्यापार भी सरकारी संस्थायें ही भलीभाँति कर सकती है। इधर साम्यवादी देशों के साथ गैर सरकारी संस्थाओं को व्यापार करने मे बडी कठिनाइयों का सामना करना पडता था। अतएव ऐसी परिस्थितियों मे सरकारी संस्था द्वारा व्यापार उचित जान कर सन् १९५६ मे भारत सरकार ने राजकीय व्यापार निगम (State Trading Corporation) की स्थापना की। प्रारम्भ में निगम केवल सिमेंट का आयात और आयात की हुई सिमेंट का वितरण करती थी तथा मैंगनीज और लोहा निर्यात करती थी। अब इसने अपना क्षेत्र विस्तृत कर लिया है। सिमेंट के अतिरिक्त, सोडा ऐश (Soda ash), कास्टिक सोडा, रेशम, उर्वरक, खडिया, दुग्धचूर्ण, अखबारी कागज इत्यादि वस्तुओं का भी आयात करती है। निगम द्वारा निर्यात किए जाने वाले पदार्थों मे मुख्य लोहा, मैंगनीज, जूते, कलात्मक वस्तुएँ, नमक, चाय, काफी, ऊनी वस्त्र इत्यादि हैं। इस भाँति भारत की नीति खाद्यान्न के आंशिक आन्तरिक व्यापार और साम्यवादी देशों के साथ विदेशी व्यापार तक सीमित है।

Q. 44. What is state Trading Corporation ? When was it established and why ? What success has it achieved in the field of trade ?

राजकीय व्यापार निगम क्या है ? इसकी कब और क्यों स्थापना हुई थी ? व्यापारिक क्षेत्र मे इसे कितनी सफलता मिली है ?

राजकीय व्यापार निगम केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित एक सीमित दायित्व *वाली निजी कम्पनी है, जो मई सन् १९५६ मे भारतीय कम्पनी कानून के अन्तर्गत बनी* थी। इसकी अधिकृत और प्राप्त पूँजी एक करोड़ रुपए है। सारी की सारी पूँजी भारत सरकार द्वारा लगाई गई है, जो सौ-सौ रुपए के अंशों (Shares) में बँटी हुई है।

उद्देश्य—

निगम का मुख्य उद्देश्य भारत के आयात-निर्यात व्यापार में भाग लेना, व्यापारिक क्षेत्र में अनेक कठिनाइयों को दूर करना, एवं व्यापारिक सगठन में सुधार करके व्यापार बढ़ाना है। जिन वस्तुओं के आयात-निर्यात में निगम भाग लेती है उनका निर्णय समय-समय पर निगम स्वयं ही करती है। आयात-निर्यात के अतिरिक्त, भारत में और अन्यत्र वस्तुओं के क्रय, विक्रय तथा परिवहन सुविधाओं के सुधार में भी निगम भाग ले सकती है। व्यापार में सम्बन्धित और सभी काम जो उक्त उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हों, भी निगम कर सकती है। इस भांति निगम का कार्य-क्षेत्र व्यापक है और उसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष व्यापार एवं तत्संबंधी सभी क्रियायें सम्मिलित हैं।

कार्य—

प्रारम्भ में निगम ने सीमित वस्तुओं का आयात निर्यात किया, जिसमें सीमेंट का आयात और लोहे एवं मैंगनीज का निर्यात सम्मिलित थे। आयात किए हुए सीमेंट का वितरण भी निगम स्वयं ही करती थी। अब निगम ने अपना कार्य-क्षेत्र बहुत बढ़ा लिया है और उत्तरोत्तर और भी बढ़ाती जा रही है। प्रारम्भ में ही निगम नियन्त्रित अर्थ व्यवस्था वाले देशों को भारतीय माल का निर्यात बढ़ाने के प्रयत्न करती रही है। इन देशों से निगम ने भारतीय माल के बदले में इस्पात, सीमेंट, औद्योगिक उपकरण इत्यादि प्राप्त किए हैं। निगम सस्ते मूल्य पर सीमेंट, सोडा-ऐश, कास्टिक सोडा, रेशम, उर्वरक, गंधक, दुग्धचूर्ण तथा अखबारी कागज इत्यादि वस्तुएँ आयात करने में सफल हुई है। भारत से निगम ने खनिज धातुएँ (लोहा और मैंगनीज), जूते, शिल्पकला की वस्तुएँ, नमक, चाय, काफी, ऊनी वस्त्र इत्यादि वस्तुओं का निर्यात किया है। जुलाई सन् १९५७ से लोहे के निर्यात का सारा काम निगम के ही सुपुर्द कर दिया गया। जुलाई सन् १९५६ में सरकार ने निगम को सीमेंट का आयात करने, देश के उत्पादकों से उसका संचय करने और अन्त में सब रेल के स्टेशनों पर समान मूल्य पर उसका वितरण करने का भी अधिकार दे दिया। निगम ने अपने प्रथम तीन वर्ष के कार्यकाल में १२६ करोड़ रुपए के मूल्य का व्यापार (५२ करोड़ रु० आयात और ७४ करोड़ रु० निर्यात) किया।

इसके अतिरिक्त निगम ने कई देशों के साथ द्विदेशीय व्यापारिक समझौते किए हैं, कई के साथ रुपए खाते खोलने में सफलता प्राप्त की है, विदेशी प्रदर्शनियों में भारतीय माल का प्रदर्शन किया है, देश के व्यापारिक हितों का विदेशी व्यापारिक हितों से सम्पर्क कराया है तथा व्यापार संवर्द्धन के और भी अनेक कार्य किए हैं।

यह विवरण निगम की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कार्यक्षमता और सफलता का द्योतक है। तो भी हमारा व्यापारी वर्ग इस संस्था को सन्देह की दृष्टि से देखता है, क्योंकि वे इसे अपना प्रतिद्वन्द्वी मानते हैं। निगम के विरुद्ध कुछ विदेशी लोगों ने भी शिकायतें की हैं कि इसकी कार्य-विधि लम्बी और उलझनपूर्ण है।

अध्याय १८

संक्षिप्त टिप्पणियाँ

(Short Notes)

Q. 45. Write brief explanatory notes on any two of the following :

(a) Invisible exports and imports; (b) favourable and unfavourable balance of trade; (c) village Bania; (d) G. A. T. T.

(Agra, 1959 supp.)

निम्नांकित में से किन्हीं दो के विषय में संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—

(क) अदृश्य आयात निर्यात; (ख) अनुकूल और प्रतिकूल व्यापाराधिक्य; (ग) ग्रामीण बनिया; (घ) गाट।

(क) अदृश्य आयात-निर्यात—

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में माल और वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ सेवाओं का भी आदान प्रदान होता है। इन सेवाओं में मुख्य पोतचालन, महाजनी (Banking), बीमा और पर्यटन इत्यादि हैं। इन सेवाओं के लेन-देन को अदृश्य आयात निर्यात कहते हैं। यदि इन सेवाओं को कोई देश दूसरे देश के निमित्त करता है तो उसके बदले में उसे उसी भांति उस देश का विनिमय प्राप्त होता है जैसे उसे माल के निर्यात करने पर प्राप्त होता है अर्थात् यह उस देश का अदृश्य निर्यात कहा जाता है। इसी भांति जो देश इन सेवाओं को दूसरे देशों से प्राप्त करता है उसे उसका मूल्य चुकाना पड़ता है अर्थात् यह उसके अदृश्य आयात हुए। माल और वस्तुओं का आदान-प्रदान दृश्य व्यापार और सेवाओं का अदृश्य व्यापार कहा जाता है।

भारत की स्थिति अभी इन सेवाओं के सम्बन्ध में अच्छी नहीं है। उसे इन सेवाओं के बड़े भाग के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतएव उसे करोड़ों रुपए जहाजी भाड़ो, बैंक ब्याज और कमीशन तथा बीमा के लिए विदेशों को देने पड़ते हैं। हम अपने व्यापार के केवल ६% को अपने जहाजों में लाने-लेजाने में समर्थ हैं; शेष ६४% व्यापार विदेशी जहाजों में होता है। ऐसी ही स्थिति बैंक एवं बीमा सुविधाओं के सम्बन्ध में है।

(ख) अनुकूल और प्रतिकूल व्यापाराधिक्य—

आयात निर्यात के अन्तर को व्यापारिक शेष कहते हैं। यदि निर्यात की अपेक्षा आयात कम हो तो दोनों के अन्तर के बराबर निर्यातकर्त्ता देश को विदेशी विनिमय प्राप्त होगा अर्थात् व्यापाराधिक्य उस देश के अनुकूल माना जाएगा। इसका कारण यह है कि उस देश को वह आधिक्य सोने अथवा अन्य बहुमूल्य धातुओं के रूप में मिलेगा, जिससे देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी तथा वस्तुओं के मूल्यों में स्थिरता आएगी। इसके विपरीत यदि निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक है तो उस देश का व्यापार उसके प्रतिकूल माना जाएगा और उसके अन्तर को प्रतिकूल व्यापाराधिक्य कहेंगे, क्योंकि उतने मूल्य का विदेशी विनिमय उसे भुगतान करना होगा। इसका प्रभाव उस देश की स्थिति पर अस्वस्थ पड़ेगा। निर्यात अधिक होना किसी देश की औद्योगिक उन्नति और अधिक काम के साधनों का सूचक है। इसके विपरीत आयात अधिक होना किसी देश के औद्योगिक पिछड़ेपन एवं कंगाली का सूचक है। इसी कारण पहली स्थिति को अनुकूल और दूसरी को प्रतिकूल मानते हैं।

(ग) ग्रामीण बनिया—

ग्रामीण बनिया से तात्पर्य ग्रामीण व्यापारी से है जो बहुधा गांव में अपनी छोटी-सी दुकान खोल लेता है और ग्रामीण उपज का क्रय-विक्रय करता है। वस्तुतः ग्रामीण क्षेत्र के व्यापार का एक बड़ा भाग इसी के हाथ में है व्यापार के साथ-साथ वह रुपए का लेन-देन अथवा महाजनी का काम भी करता है। किसानों से माल लेकर निकटवर्ती मण्डी अथवा नगर में बेचकर अपनी जीविका कमाता है। वस्तुतः ग्रामीण किसान और नगर के आढ़तिया के बीच की यह मुख्य कड़ी है। सरसों के व्यापार का ६८%, अलसी के व्यापार का ४०%, घी के व्यापार का ३२% और चावल के व्यापार का १५% इसी के हाथ में है। आवश्यकता पड़ने पर ग्रामीण किसान इससे अन्न, बीज अथवा रुपया ले लेता है और फसल आने पर उसे जिन्स के रूप में चुका देता है। बहुधा उधार देते समय ही भुगतान सम्बन्धी भाव निश्चय हो जाता है और यह भी समझौता हो जाता है कि वह किसान अपनी सारी उपज उसी के हाथ बेचेगा। अन्न बीज के लिए बहुधा सवाई-ड्योढ़ी प्रथाएँ प्रचलित है, जिनके अन्तर्गत फसल आने पर उधार ली हुई मात्रा का सवा गुना और डेढ़ गुना देना पड़ता है अर्थात् ब्याज की दर २५ और ५०% होती है। रुपए के ऋण के लिए भी ब्याज की दर ऊँची होती है; सामान्यतः ३७½% ब्याज दर प्रचलित है।

एक बार कोई किसान इनके साथ लेन-देन करता है तो वह फिर सर्दव के लिए उसमें बँध जाता है। ये लोग ऊँची ब्याज लेने के अतिरिक्त देते समय कम और लेते समय अधिक तौलकर भी किसान को १० से १२% की हानि पहुँचाते हैं।

(घ) हाट—

इसका विवरण प्रश्न ३३ में दिया जा चुका है।

Q. 46. Write brief explanatory notes on any two of the following : (a) Hawana charter, (b) Transit trade, (c) Export Promotion Committee, (d) Trade Associations. **(Agra, 1959)**

निम्नांकित में से किन्हीं दो के विषय में संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :

(क) हवाना चार्टर, (ख) संक्रमण व्यापार, (ग) निर्यात प्रवर्तन समिति, (घ) व्यापार संघ।

(क) हवाना चार्टर—

इसका विवरण प्रश्न ३२ मे दिया जा चुका है।

(ख) संक्रमण व्यापार—

जो विदेशी माल किसी देश से होकर विदेश जाता है उसे संक्रमण अथवा मार्गवर्ती व्यापार कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है : (१) प्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार एवं (२) अप्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार।

(१) प्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार—जो माल विदेश से सीधा विदेश चला जाता है अर्थात् देश की सीमा के अन्तर्गत तो उसका प्रवेश होता है किन्तु उसका चालान करने वाला वास्तविक निर्यातकर्त्ता देश ही है, यद्यपि यह माल मध्यस्थ देश के बन्दरगाह से एवं उस बन्दरगाह पर स्थित मध्यस्थो द्वारा ही चालान किया जाता है। ऐसे माल को मध्यस्थ देश के आयात मे सम्मिलित नहीं किया जाता ; उसे सर्वथा सीधा विदेश जाने वाला माल मान लिया जाता है। नेपाल, भूटान, सिक्कम और तिब्बत से प्रति वर्ष कुछ माल विभिन्न देशो को भारत से होकर जाता है। सन् १९५७ में इसका मूल्य १'३० करोड रुपए था और सन् १९५८ मे २'११ करोड रुपए।

(२) अप्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार—जो विदेशी माल आते समय आयात मे सम्मिलित कर लिया जाता है और विदेश जाते समय पुनर्नियात मे, उसे अप्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार कहते है। अन्तर इतना है कि प्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार का माल देश मे उतरता नही, सीधा विदेश चला जाता है, किन्तु अप्रत्यक्ष देश मे उतर कर विदेश जाता है। प्रत्यक्ष पर आयात कर नहीं लगते, अप्रत्यक्ष पर लगने आवश्यक हैं। जहाँ बन्दरगाहो पर मुक्त व्यापार क्षेत्र होते है वहाँ पुनर्नियात वाले माल को उस समय तक मुक्त माना जाता है जब तक कि वह देश के अन्तर्गत प्रवेश नहीं करता। सन् १९५७ मे भारत के अप्रत्यक्ष मार्गवर्ती व्यापार का मूल्य ५'११ करोड रुपए था और सन् १९५९ मे ६ ६६ करोड रुपए।

(ग) निर्यात प्रवर्तन समिति—

निर्यात मे वाञ्छनीय वृद्धि के निमित्त सुभाव देने के लिए बनाई गई समिति निर्यात प्रवर्तन समिति है। युद्धोत्तर काल मे ऐसी दो समितियाँ नियुक्त की जा चुकी है। एक सन् १९४९ में और दूसरी सन् १९५७ मे। प्रथम

समिति युद्धकालीन और विभाजन-जनित कठिनाइयों के कारण भारतीय व्यापार के बढ़ते हुए घाटे को कम करने के यत्न बताने के लिए नियुक्त की गई थी। उस समय हमारे सामने बढ़ते हुए व्यापारिक घाटे को कम करने के अतिरिक्त डालर की समस्या भी महत्वपूर्ण थी। अतएव समिति ने डालर राष्ट्रों को निर्यात में वृद्धि करने की ओर जोर दिया और तत्सम्बन्धी सुझाव भी दिए। दूसरी समिति फरवरी सन् १९५७ में नियुक्त की गई थी। उस समय भी व्यापारिक घाटे को कम करने का प्रश्न उसके सामने था, किन्तु यह व्यापारिक घाटा किन्हीं विशेष परिस्थितियों का परिणाम नहीं था; यह हमारा स्वयं का उत्पन्न किया हुआ था। देश के औद्योगीकरण और आयोजन का यह अवश्यम्भावी परिणाम था। इस समिति ने निर्यात बढ़ाने के अनेक सुझाव दिए, जिन्हें कार्यान्वित करके देश को लाभ हुआ है। समिति ने भारतीय निर्यात वस्तुओं एवं बाजारों का विविधीकरण करके निर्यात को ७०० करोड़ रुपए से ७५० करोड़ रुपए वार्षिक की सीमा तक बढ़ाने को कहा। समिति ने पोतचालन, बैंक व बीमा सेवाओं की विशेष वृद्धि करने की ओर ध्यान दिलाया और पर्यटन बढ़ाने को भी कहा। निर्यात बढ़ाने के अन्य सुझावों में समिति ने (१) कृषि और औद्योगिक उत्पादन वृद्धि विशेषतः निर्यात वस्तुओं की, (२) निर्यातकों को आयकर और सीमा शुल्क सम्बन्धी छूट, (३) पुनर्निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन, (४) अधिकाधिक साख सुविधा, (५) विदेशी वाणिज्य दूतावास के अधिकारियों को वाणिज्य प्रशिक्षण, (६) बाजार सर्वेक्षण, (७) प्रभावशाली प्रचार, (८) निर्यात वस्तुओं का आकर्षक संवेष्टन, (९) निर्यात वस्तुओं को रेल-भाड़ों में छूट, (१०) राजकीय व्यापार निगम और निर्यात जोखिम बीमा निगम के कार्य क्षेत्रों में वृद्धि, (११) सभी वस्तुओं के लिए निर्यात संवर्द्धन परिषदें नियुक्त करना इत्यादि सुझाव दिये।

(घ) व्यापार संघ—

व्यापार से सम्बन्ध रखने वाली मुख्य गैर सरकारी संस्थायें वाणिज्य-मण्डल (Chambers of Commerce) कहलाते हैं। सभी व्यापारिक केन्द्रों और बड़े नगरों में वाणिज्य मण्डल बन गये हैं। ये संस्थायें व्यापारियों में परस्पर सहयोग बढ़ाती हैं; उन्हें संगठित करती हैं; व्यापारी वर्ग की आवाज संगठित रूप से सरकार तक पहुँचाती हैं, विधान सभाओं में अपने प्रतिनिधि भेजकर व्यापारी वर्ग के हितों की रक्षा करती हैं तथा विविध यत्नों द्वारा व्यापारी वर्ग का पथ-प्रदर्शन करती हैं। कभी कभी ये संस्थायें देशी व्यापारी को विदेशी व्यापारी के सम्पर्क में लाती तथा व्यापारी वर्ग को वित्तीय सहायता भी करती हैं। मण्डल के सदस्यों में सद्भाव बढ़ाना तथा उनकी कठिनाइयों और समस्याओं को हल करना भी इनका कर्तव्य है।

प्रत्येक उद्योग अथवा फुटकर व्यापार से सम्बन्ध रखने वाली कुछ छोटी संस्थायें भी होती हैं, जो प्रत्येक प्रान्त के व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्रों में स्थित होती हैं। देश भर के व्यापार-व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाली सबसे बड़ी संस्था नई

दिल्ली की फैडरेशन ऑव इंडियन चैम्बर्स ऑव कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री (Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry) है। यह देश भर के प्रमुख व्यापारियों एवं व्यवसाइयों का प्रतिनिधित्व करती है एवं आन्तरिक व विदेशी व्यापार, परिवहन, उद्योग, निर्माण, वित्त, कर इत्यादि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करती और उनकी उन्नति के मार्ग बतलाती है। मतभेद की बातों में मध्यस्थता करके, वाणिज्य-व्यापार सम्बन्धी आँकड़े संकलित करके, वैधानिक नियमों का समर्थन अथवा विरोध करके, सदस्यों में समान प्रथाओं का प्रचार करके तथा अन्य प्रकार व्यापार को समुन्नत बनाने के यत्न करती है। देश के विभिन्न व्यापारियों-व्यवसाइयों की छोटी-छोटी संस्थायें इसकी सदस्य हैं।

Q. 47. Write brief notes on any two of the following: (a) Bilateral pacts, (b) Internal trade, (c) State Trading Corporation.

किन्हीं दो के विषय में संक्षिप्त विवरण लिखिए : (क) द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते, (ख) आन्तरिक व्यापार, (ग) राजकीय व्यापार निगम।

(क) द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते—

जैसा कि नाम से प्रतीत होता है, द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते दो देशों के बीच व्यापार के सम्बन्ध में होते हैं। ये समझौते बहुधा अल्पकालीन समझौते होते हैं। इनकी अवधि तीन महीने, छः महीने, एक वर्ष, दो वर्ष अथवा अधिक से अधिक पाँच वर्ष की होती है, यद्यपि दोनों पक्षों को मान्य हो तो एक अवधि समाप्त होने पर इनकी अवधि बढ़ाई जा सकती है। ये समझौते जिन देशों के बीच होते हैं उनके पारस्परिक पक्षपात के सूचक हैं। इनका क्षेत्र सीमित होता है। ये समझौते उस समय उपयुक्त समझे जाते हैं जब बहुपक्षीय समझौतों के लिए अनुकूल वातावरण नहीं होता।

आर्थिक राष्ट्रीयता इन समझौतों की जननी है। प्रथम युद्ध के उपरान्त सभी देशों ने विदेशी व्यापार पर ऊँचे कर और भारी प्रतिबन्ध लगा दिये। ऐसी स्थिति में जिन देशों को अपना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाना श्रेयस्कर था उन्होंने मित्र देशों के साथ द्विपक्षीय समझौते किये। द्वितीय युद्ध के उपरान्त यह प्रवृत्ति और भी बलवती हो गई और जो कुछ भी विश्व का व्यापारिक विकास हुआ है वह ऐसे ही समझौतों के अनुसार हुआ है। भारत को भी ऐसे समझौतों की शरण लेनी पड़ी और इस समय लगभग २६ देशों के साथ इसके द्विपक्षीय समझौते चालू हैं। इनका विशेष विवरण प्रश्न ३४ में दिया जा चुका है।

(ख) आन्तरिक व्यापार—

आन्तरिक व्यापार से तात्पर्य देश के अन्तर्गत भागों में एक स्थान से दूसरे स्थान, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त अथवा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को

आने-जाने वाले माल के व्यापार से है। भूमि की बनावट, क्षेत्र विस्तार एवं जलवायु की विविधता के कारण भारत के एक प्रान्त की उपज और वहाँ के निर्मित पदार्थ दूसरे प्रान्त को आते-जाते रहते हैं। कोयला के मुख्य क्षेत्र बिहार, प० बंगाल और मध्य प्रदेश हैं, जो देश भर को कोयला देते हैं; लोहे-इस्पात के प्रमुख कार्यालय भी इसी क्षेत्र में हैं। सीमेंट के निर्यातकर्ता बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं मद्रास हैं। चावल मद्रास, उड़ीसा और प० बंगाल में होता है, गेहूँ पंजाब में, नमक बम्बई और राजस्थान में; जूट और चाय बंगाल और आसाम में; सूती वस्त्र मुख्यतः बम्बई और मध्यप्रदेश में; चीनी उत्तरप्रदेश व बिहार में। इन वस्तुओं का विभिन्न क्षेत्रों और प्रान्तों में आदान-प्रदान आन्तरिक व्यापार है।

आन्तरिक व्यापार को सामान्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है: (क) रेल और नदी द्वारा व्यापार, (ख) समुद्रतटीय व्यापार और (ग) सड़क मार्ग से होने वाला व्यापार। प्रथम दोनों प्रकार के अधिकृत आंकड़े उपलब्ध हैं, किन्तु सड़क मार्ग के व्यापार के नहीं। रेल और नदी मार्ग से प्रति वर्ष लगभग १२८ करोड़ मन माल का आवागमन होता है। समुद्र तट से होने वाले व्यापार का वार्षिक मूल्य लगभग ३४३ करोड़ रुपए है। कुछ लोगों का अनुमान है कि सड़क मार्ग से प्रति वर्ष बारह-तेरह करोड़ टन माल आता-जाता है।

राष्ट्रीय नियोजन समिति ने सन् १९३८ में देश के कुल आन्तरिक व्यापार का मूल्य ७००० करोड़ रुपए से १०,००० करोड़ रुपए के बीच में आंका था। तब से अब देश के उत्पादन में बहुत वृद्धि हो गई है और हमारे आन्तरिक व्यापार का मूल्य लगभग १५,००० करोड़ रुपए अनुमानित किया जा सकता है।

(घ) राजकीय व्यापार निगम—

इसका विवरण प्रश्न ४४ में दिया जा चुका है।

Q. 48. Write brief notes on any two of the following:

(a) Entrepot trade, (b) Indo-Russian Trade prospects, (c) Home charges. (Agra. 1956).

किन्हीं दो के विषय में संक्षिप्त विवरण लिखिए: (क) पुनर्निर्यात व्यापार, (ख) भारत रूस के व्यापार की सम्भावनाएँ, (ग) गृह खर्च।

(क) पुनर्निर्यात व्यापार—

पुनर्निर्यात व्यापार को सम्प्रेषण अथवा मार्गवर्ती व्यापार भी कहते हैं। इसका विवरण प्रश्न ४६ (ख) में दिया जा चुका है।

(ख) भारत-रूस के व्यापार की संभावनाएँ—

द्वितीय युद्ध से पूर्व भारत रूस का व्यापार नगण्य (२८ लाख रुपए)

था किन्तु युद्धोत्तर काल में खाद्य समस्या के भयानक हो जाने के कारण भारत को २०,००० टन रुई और ७,००० टन चाय के बदले में रूस से २ लाख टन गेहूँ और २०,००० टन मक्का लेने का एक समझौता करना पड़ा। देश के स्वतन्त्र होने के उपरान्त रूस के साथ हमने और भी अधिक व्यापारिक सम्पर्क बढ़ाया। तब से रूस के साथ हमारा व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया है और उत्तरोत्तर इसके अधिकाधिक होने की संभावना है। सन् १९४८-४९ में रूस के साथ हमारा कुल व्यापार केवल ६ करोड़ रुपए था, सन् १९४९-५० में वह २० करोड़ रुपए अर्थात दूने से अधिक हो गया। सन् १९५७ तक वह ४० करोड़ रुपए अर्थात सन् १९४९-५० की अपेक्षा और भी दूना हो गया। सन् १९५९ में उसका मूल्य ४७ करोड़ रुपए था। इस वृद्धि के कई कारण हैं।

(क) भारत-रूस की व्यापारिक वृद्धि का मुख्य कारण दोनों देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों का बढ़ना है। रूस भारत के आर्थिक विकास में पूर्ण रुचि ले रहा है और सहायता कर रहा है।

(ख) सन् १९५३ के पचवर्षीय समझौते के उपरान्त दोनों देशों के व्यापार में विशेष वृद्धि होती गई है। इस समझौते के अनुसार दोनों देश कुछ अनुसूचित वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिए सहमत हुए थे। इस सूची को आवश्यकतानुसार बढ़ाया जाता रहा और नवम्बर सन् १९५८ में पिछले समझौते का अन्त होने पर दूसरा पचवर्षीय समझौता हो गया। इसके अनुसार दोनों देश समता और पारस्परिक लाभ के सिद्धान्तों के अनुसार एक दूसरे के साथ अधिकतम सीमा तक व्यापार बढ़ाने के लिए सहमत हुए। प्रत्येक देश दूसरे के साथ 'अधिकतम पक्षपात' का व्यवहार करेगा।

(ग) उक्त समझौते के द्वारा रूस भारत से रुपए में भुगतान लेने को राजी हो गया। उसने भारत के रिजर्व बैंक में अपना एक खाता खोल दिया है जिसके द्वारा सारे लेन-देन रुपए में ही करने पड़ते हैं और भारत को विदेशी विनिमय की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता।

(घ) दोनों देशों के बीच आर्थिक सहयोग के और भी कई समझौते हुए हैं, जिनका भी व्यापारिक वृद्धि में कम सहयोग नहीं रहा। इनमें मुख्य समझौते : (१) भिलाई लोहा इस्पात कारखाना निर्माण, (२) सन् १९५६ का १० लाख टन लोहा-इस्पात देने का तृतीय वर्षीय समझौता, (३) मिट्टी के तेल की खोज और तेल निकालने एवं खान खोदने के यंत्र-उपकरण देने का समझौता, (४) मार्च सन् १९५६ की रासायनिक और इंजीनियरी उद्योगों के क्षेत्र में सहयोग की वार्त्ता, (५) प्राविधिक सहायता समझौता इत्यादि हैं।

(ङ) सन् १९५६ से भारत से रूस को नियमित पोतचालन सेवा और १९५९ से विमान सेवा चालू हो गई हैं।

(च) सन् १९५४-५५ में भारत के प्रधान मंत्री ने रूस का दौरा किया और

सीमा शुल्क लगाने के दो मुख्य उद्देश्य हैं :

(क) आय अथवा राजस्व के लिए तथा

(ख) औद्योगिक संरक्षण के लिए।

(क) राजस्व शुल्क दरें (Tariffs for Revenue)—

शुल्क दरों का समारम्भ एक कर के रूप में हुआ। सरकारी कोष को धन देने के विचार से विदेश से आयात किए जाने वाले माल पर चुंगी ली जाने लगी। इस चुंगी की दर बहुत ऊँची नहीं होती थी। इस चुंगी के लगाने में विदेशी व्यापार को सरकारी आय का एक साधन मान लिया जाता है। राजस्व मूल उद्देश्य होने के कारण शुल्क दरें इस सावधानी के साथ लगाई जाती हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रवाह में कोई रुकावट न पड़ने पाए। माँग और पूर्ति की स्थिति का पूर्ण ध्यान रखा जाता है। बहुधा आयात कर उन वस्तुओं पर लगाया जाता है जो देश में उत्पन्न नहीं होतीं। यदि ऐसी वस्तुओं पर भी आयात कर लगाया जाता है जो देश में भी उत्पन्न होती हैं तो आयात कर के साथ देशी उत्पादनों पर उचित उत्पादन कर (excise duty) लगाए जाते हैं ताकि देशी-विदेशी वस्तुओं की प्रतियोगिता उचित सीमा पर रखी जा सके और सरकारी आय में भी वृद्धि हो सके। लगभग सौ वर्ष पूर्व अनेक देशों में राजस्व शुल्कदरें (Tariffs for revenue) सरकारी आय का मुख्य साधन थीं, किन्तु अब उनका योग सरकारी वार्षिक आय में बहुत कम रह गया है।

(ख) संरक्षण शुल्कदरें (Protectionist tariff)—

राष्ट्रीय उद्योगों के संरक्षण के निमित्त भी शुल्कदरें लगाई जाती हैं। ये दरें बहुधा इतनी ऊँची होती हैं कि वे विदेशी माल को देशी बाजार में आने से रोक सकें। कभी संरक्षणात्मक शुल्कदरें देशी माल का मूल्य बढ़ाने के विचार से भी लगाई जाती हैं ताकि उस माल का देश में उत्पादन लाभप्रद हो सके। युद्ध का भय भी कुछ जातियों को ऊँची शुल्कदरें लगाने को बाध्य करता है। युद्ध के भय के कारण प्रत्येक देश उस सीमा तक स्वावलम्बी बनना चाहता है कि युद्ध छिड़ने पर उसे कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

संरक्षण सम्बन्धी शुल्कदरों के पीछे लोगों का यह विश्वास है कि सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता का सरल मार्ग स्वस्थ राष्ट्रीयता है। अतएव यह कहा जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन के व्यवस्थित विकास के लिए प्रत्येक जाति अथवा देश के उचित विकास का सिद्धान्त स्वीकार ही नहीं कर लेना चाहिए वरन् उसका सादर स्वागत करना चाहिए। किसी देश को अपनी घरेलू आवश्यकता पूर्ति के लिए ही उद्योगों की आवश्यकता नहीं है, वरन् विदेशी माल और सेवाओं के क्रय के लिए आवश्यक क्रय-शक्ति (Purchasing capacity) उत्पन्न करने के लिए भी इसकी आवश्यकता है। किसी उद्योग का राष्ट्रीय महत्व समझने के लिए उस उद्योग की अन्तर्राष्ट्रीय क्रय-शक्ति भी एक महत्वपूर्ण मापदण्ड मानी जाती है।

अनेक देशो मे युद्धोत्तर काल मे शुल्कदरो की अपार वृद्धि आयोजित अर्थ-व्यवस्था के फलस्वरूप हुई है क्योंकि उनके द्वारा मूल्यों पर सहज नियन्त्रण सम्भव है। देश का उत्पादन बढ़ाकर कार्य के साधन बढाने के विचार मे भी अनेक देशो ने शुल्कदरो मे वृद्धि की है।

(ग) लेन देन शुल्कदरें (Tariffs for bargaining)—

ऊपर बताए गए दो मुख्य उद्देश्यों के अतिरिक्त उद्देश्य लाभ के लिए भी शुल्कदरो का प्रयोग किया जाता है। एक महत्वपूर्ण मन्तव्य दो देशो के बीच व्यापारिक लेन-देन का सौदा करना है। द्वितीय युद्ध के उपरान्त के वर्षों मे व्यापारिक क्षेत्र मे द्विदेशीय समझौतो का चलन अत्यन्त बढ गया है। इन समझौतो की शर्तें तय करते समय प्रत्येक देश अपनी शुल्कदरें उपस्थित करता है अथवा उनमे छूट देता है। दूसरे देश मे भी वह उसी के अनुरूप छूट प्राप्त करने का समझौता करता है। इस प्रकार लगाई गई शुल्कदरें समता अथवा निष्पक्षता के सिद्धान्त का उल्लघन करती हैं।

(घ) पक्षपातपूर्ण शुल्कदरें (Preferential tariffs)—

कुछ देशो ने मिल कर प्रादेशिक गुट अथवा सीमा शुल्क संघ बना लिए हैं। ये देश अपने गुट अथवा सघ से बाहर के देशो के माल पर सदस्य देशो के माल की अपेक्षा ऊँची शुल्कदरें लगाते हैं।

(ङ) व्यापार सतुलन शुल्कदरें—

कुछ देश अपने व्यापारिक असतुलन की रोक-थाम के निमित्त भी शुल्कदरें लगाते अथवा घटाते-बढ़ाते हैं। जिन देशो के साथ उनका व्यापार घाटे मे होता है उनके प्रति ऊँची शुल्कदरें लगाई जाती है। इस युक्ति द्वारा दो देशो के व्यापार का संतुलन सम्भव है।

कर के उपरान्त भारत सरकार की वार्षिक आय के साधनो मे द्वितीय स्थान सीमाशुल्क का ही है।

(२) उत्पादन विधि में सुधार—

बिछडे हुए देशो मे सीमाशुल्क उत्पादन के साधनो और उत्पादन क्रिया के सुधार के साधन माने जाते है। ऐसे देशो के शिशु उद्योग बिना सीमाशुल्क के विदेशी प्रतियोगिता को सहन नही कर सकते।

(३) व्यापार अर्घ-सुधार (Improving terms of trade)—

कभी-कभी शुल्कदरो का प्रयोग किसी देश के व्यापार अर्घ के सुधार के साधन के रूप मे भी किया जाता है। व्यापार अर्घ से तात्पर्य आयात माल की अपेक्षा निर्यात माल के मूल्यो मे सुधार और वृद्धि है। व्यापार अर्घ के सुधार का प्रभाव यह होता है कि यह देश अपने निर्यात माल से अधिक मात्रा मे माल का आयात करने मे समर्थ हो जाता है।

(४) व्यापारिक समझौते—

वर्तमान समय मे द्विदेशीय व्यापारिक समझौतो का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास मे विशेष महत्व है। शुल्कदरे इन समझौतो के मुख्य आधार हैं। एक देश शुल्कदरो मे वृद्धि करता है तो दूसरे देश को भी ऐसा करना अनिवार्य होता है।

(५) उत्पादन व्यय में समानता लाना—

शुल्कदरो के द्वारा इस बात का यत्न किया जाता है कि विदेशी माल देश मे आकर देशी माल के मूल्य से कम न पडे। यदि ऐसा सभव है तो देशी माल की माँग समाप्त होकर देशी उद्योग ठप्प हो जायेंगे। अतएव देशी-विदेशी माल के उत्पादन व्यय मे समता लाने के लिए शुल्कदरें लगाई जाती है।

(६) बेकारी दूर करना—

देश मे काम के साधन बढाने और इस भाँति बेकारी के दूर करने के लिए भी शुल्कदरो का प्रयोग किया जाता है। इस भाँति बेकारी दूर करके शुल्कदरो से लोगो का जीवन-स्तर ऊँचा करने मे सहायता मिलती है।

(७) विकृत विदेशी प्रभाव का बचाव—

कभी-कभी विदेशी प्रभाव के कारण देश की आर्थिक उन्नति रुक जाती है। ऐसे विदेशी प्रभाव को बचा कर शुल्कदरो द्वारा राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की जाती है। विविध देशो द्वारा राष्ट्रीय आय मे यह वृद्धि विविध प्रकार से की जा सकती है। यदि किसी देश मे औद्योगिक क्षमता है तो वह देश अपने उद्योगो के विविधीकरण द्वारा आय वृद्धि कर सकता है।

(८) पूँजी का आयात—

विदेशी पूँजी आकर्षित करने के लिए भी शुल्कदरों का प्रयोग किया जाता है।

(९) राष्ट्र रक्षा उद्योगों को बढ़ावा—

देश-रक्षा सम्बन्धित उद्योगों की उन्नति विदेशी माल पर शेर लगाकर की जा सकती है। आज-कल सभी देश ऐसे उद्योगों को आर्थिक सहायता देकर बढ़ावा देते हैं और आर्थिक सहायता के निमित्त शुल्क दरें लगाई जाती हैं। कोई भी देश आज देश रक्षा-उद्योगों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर नहीं रहना चाहता।

(१०) हानिकारक वस्तुओं की रोक—

अनेक देश उन वस्तुओं के आयात पर ऊँचे सीमाशुल्क लगाते है जिन्हें वे देश के लिए वाञ्छनीय नहीं समझते। रोगी पशु अथवा पौधे, अफीम और अन्य नशीली वस्तुएँ तथा कामुक साहित्य ऐसे ही पदार्थ हैं।

(११) व्यवसाय विशेष के संरक्षण के निमित्त भी सीमाशुल्क लगाए जाते है। ऐसे व्यवसायों को राजनीतिक अथवा सामाजिक कारणों से संरक्षण दिया जाता है। कृषि का व्यवसाय ऐसा ही एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है।

Q. 3 What tariff systems are prevalent at present? How will you classify them?

किस किस प्रकार की शुल्कदरें आज बहुधा प्रचलित हैं? उनका वर्गीकरण आप कैसे करेंगे?

सामान्यतः शुल्कदरों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :-

(क) इकहरी (Single-line), (ख) दुहरी (Double line) और (ग) तिहरी (Triple line)।

(क) इकहरी शुल्कदरें (Single line tariff)—

इकहरी शुल्कदरें सीमाशुल्क का सरल से सरल ढंग है। ये दरें पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ लगाई जाती हैं। इसमें सभी प्रकार के आयात माल पर बिना देश-सम्बन्धी भेदभाव के एक ही शुल्कसूची लागू होती है। इस भाँति भेदभाव की सम्भावना का सर्वथा अन्त कर दिया जाता है। इस प्रकार की शुल्कसूचियाँ दूसरे देशों के लेन-देन और समझौतों के लिए विशेष उपयोगी नहीं हैं। ये शुल्कदरें लोचरहित होती हैं जिन्हें देश के उद्योग व्यापार की आवश्यकतानुसार समायोजित करना कठिन होता है।

ये शुल्कदरें उन देशों के लिए लाभदायक हैं जो आदान-प्रदान हीन (non-bargaining) वाणिज्य नीति अपनाते हैं। ये देश शुल्कदरों को दूसरे देशों के साथ आदान प्रदान के व्यवहारों के साधन के रूप में प्रयोग नहीं करते और न वे कोई छूट ही उन देशों को देते हैं। जो देश इस शुल्क-व्यवस्था को अपनाता है वह या तो अन्य देश के साथ सौदा करने (negotiate) को सहमत नहीं होता और यदि होता भी है तो सौदे के फलस्वरूप दी गई छूटों (concessions) को अन्य देशों को भी देने लगता है। इस प्रकार प्रचलित दर के स्थान पर नई दर लागू होने लगती है और शुल्क सूची का इकहरा रूप जारी रहता है। शुल्क की दर निश्चित करने में देश की राष्ट्रीय आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखा जाता है और सहयोगी देश को पूर्ण आश्वासन मिल जाता है कि उसे न कोई हानि पहुँचाई जायगी और न उसके प्रति कोई भेदभाव का ही व्यवहार किया जायगा।

(ख) दुहरी शुल्कदरें (Double-line tariff)—

इस व्यवस्था के अन्तर्गत दो शुल्क सूचियाँ बनाई जाती हैं। इसका सिद्धान्त सभी अथवा कुछ वस्तुओं पर दो दरें लगाने का है। देश की सरकार दोनों शुल्क सूचियों को प्रारम्भ में ही घोषित कर देती है। कभी-कभी एक शुल्क सूची प्रारम्भ में घोषित कर दी जाती है और दूसरी व्यापारिक समझौतों के फलस्वरूप निश्चित की जाती है। दूसरी शुल्कदरें सभी वस्तुओं पर लागू होनी आवश्यक नहीं हैं। जो देश इस प्रकार की शुल्कदरें लगाता है वह एक ऐसा देश होता है जिसके अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध अच्छे होते हैं और जो व्यापारिक आदान-प्रदान के सिद्धान्त में विश्वास करता है। देश के व्यापार उद्योग के विकास के साथ-साथ ऐसे देश को नए व्यापारिक सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता होती है और वह नए देशों के साथ समझौते करता है। इन शुल्क दरों के दो मुख्य रूप हैं : (१) सामान्य और लौकिक अथवा व्यावहारिक (General and conventional), (२) उच्चतम और न्यूनतम (Maximum and minimum)।

सामान्य और व्यावहारिक शुल्कदरें—

इस व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ सामान्य शुल्क सूचियाँ होती हैं जो सामान्यतः सब देशों पर लागू होती हैं और साथ ही साथ यह घोषणा कर दी जाती है कि किसी देश के साथ समझौते द्वारा इन शुल्क सूचियों में संशोधन किया जा सकता है। यह पद्धति लोचदार (flexible) होती है; यह आदान-प्रदान की कोई सीमा नहीं बाँधती; और समझौते की अवधि के लिए शुल्क दरें स्थिर रही आती हैं। इसका एक बड़ा दोष यह है विभिन्न देशों के साथ विभिन्न शुल्कदरें लगानी पड़ती हैं जो प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयों को बढ़ा देती हैं। इसका दूसरा दोष यह है कि एक देश को दी गई छूट अन्य देशों में विरोध भाव उत्पन्न कर सकती है। इस व्यवस्था को

पोतचालन उद्योग को सहायता देने के साथ-साथ उद्योगपतियों से यह आशा करती है कि वे राष्ट्रीय वणिकपोत का समुचित प्रसार करेंगे और नवयुवकों को आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करेंगे और इस प्रकार देश के राष्ट्रीय सामुद्रिक-बल के लिये एक सहायक साधन उपलब्ध करेंगे। इस प्रकार की सहायता को आर्थिक सहायता (Subsidy) कहा जाता है। इसके विपरीत जिस सहायता को सरकार उद्योग विशेष के सहायतार्थ बिना किसी आशा के देती है उसे मुक्त सहायता अथवा निष्क्राम्य प्रव्याजि (Bounty) कहा जाता है। इस सहायता के बदले सरकार कुछ भी प्राप्त करने की आशा नहीं रखती है।

प्रायः इस प्रकार की आर्थिक सहायता निर्यात वस्तुओं पर दी जाती है। एक ओर विदेशी बाजारों में माल की प्रतियोगिता सहन करने की शक्ति बढ़ाई जाती है और दूसरी ओर उसका उत्पादन व्यय कम करने का यत्न किया जाता है। इसके द्वारा उस उद्योगपति अथवा निर्यातकर्त्ता की प्रतियोगी शक्ति देशी अथवा विदेशी बाजार में बढ़ायी जाती है जिसे कि सरकार पक्षपात दिखाना चाहती है।

यह सहायता प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूप में दी जा सकती है। प्रत्यक्ष सहायता उत्पादक अथवा निर्यातकर्त्ता को नकद दे दी जाती है किन्तु अप्रत्यक्ष सहायता करों में छूट और फिरौती, सस्ते जहाजी भाड़े, करों से मुक्ति, कम ब्याज की दर पर सरकारी ऋण इत्यादि रूप में दी जाती है। आजकल प्रायः अप्रत्यक्ष सहायता का विशेष चलन है और विभिन्न देशों की सरकारें ऐसी ही सहायता देकर निर्यात बढ़ाने अथवा अपने माल के लिये बाजार बनाने के यत्न करती हैं।

(ख) प्राथमिकता अथवा पक्षपात (Preferences)—

कभी कभी कुछ देश मिल कर अपना एक व्यापारिक गुट्ट बना लेते हैं जो गुट्ट से बाहर के देशों के साथ ऊँची शुल्क दरें लगाकर पक्षपात बरतते हैं। इसके साथ-साथ गुट्ट के सदस्य परस्पर व्यापारिक छूट और सुविधायें देकर व्यापार वृद्धि के यत्न करते हैं। इस प्रकार का महत्वपूर्ण उदाहरण १९३२ का ओटावा समझौता है जिसके द्वारा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के देश परस्पर व्यापारिक प्रतिबन्ध हटाने और दूसरे देशों के प्रति प्रतिबन्ध लगाने के एक समझौते में प्रतिज्ञाबद्ध हुए। इस समझौते के तीन मुख्य उद्देश्य थे : (१) साम्राज्य के देशों के प्रति पूर्ण पक्षपात अथवा प्राथमिकता का व्यवहार, (२) इस पक्षपात का रूप साम्राज्य के अन्तर्गत आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध हटाना था, (३) ये पक्षपातपूर्ण शुल्क दरें ऐसी हों जो साम्राज्य के अन्तर्गत व्यापार के प्रवाह में कोई रुकावट न डालें। इस नीति के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के देशों ने साम्राज्य के बाहर के देशों के माल का बहिष्कार करने का निश्चय किया। यह व्यापार सरिता का प्रवाह किसी कृत्रिम दिशा में मोड़ने के लिए किया गया था।

आयात कर औद्योगिक संरक्षण का सबसे सरल और लोकप्रिय ढंग है। विदेशी माल के आयात पर कर लगने से उनका देश में मूल्य बढ़ जाता है और देशी उद्योग को अपना माल बेचने का अवसर मिल जाता है। आयात किए जाने वाले माल की मात्रा निश्चित कर दी जाती है। इससे अधिक विदेशी माल देश में नहीं आ सकता। देश के उद्योगपतियों अथवा निर्माताओं को विविध प्रकार की आर्थिक सहायता देकर भी उनके माल का मूल्य कम किया जाता है ताकि वे विदेशी माल की प्रतियोगिता का सामना कर सकें। विदेशी विनिमय पर नियन्त्रण लगाकर अथवा विदेशी माल का आयात सर्वथा निषेध घोषित करके भी संरक्षण प्रदान किया जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है देश के उद्योगों को विदेशी माल की प्रतियोगिता से बचाने के विचार से संरक्षण दिया जाता है। उसका उद्देश्य अविकसित अथवा अर्द्ध विकसित देश में नये उद्योग स्थापित करना तथा वहाँ के पुराने उद्योगों को बल देना है। आज के आर्थिक राष्ट्रीयता के युग में बिना संरक्षण के अविकसित देशों की औद्योगिक उन्नति संभव नहीं है और बिना औद्योगिक उन्नति के कोई भी देश निर्बल बना रहता है; वह न अपने देश की गरीबी से ही छुटकारा पा सकता है और न विदेशी आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकता है। उसे अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखना सर्वथा असंभव है।

राजकोषीय आयोग १९५०—

भारत में १९२२ में सर्वप्रथम औद्योगिक संरक्षण की नीति अपनाई गई। उस समय कुछ चुने हुए उद्योगों को ही संरक्षण देना उचित समझा गया, किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त स्थिति बदल गई। आयोग ने प्रयुक्त नीति को देश की आर्थिक उन्नति और औद्योगिक विकास का मुख्य साधन बनाया तथा संरक्षण सम्बन्धी नियम भी बनाये। आयोग ने औद्योगिक संरक्षण का नियोजित आर्थिक विकास से घनिष्ट सम्बन्ध बतलाते हुए, संरक्षण के निमित्त उद्योगों का विधिवत वर्गीकरण किया और रक्षण संसम्बन्धी पूर्वाधिकार निश्चित किये। आयोग ने संरक्षण के निमित्त उद्योगों को तीन वर्गों में विभाजित किया :

(१) देश रक्षा सम्बन्धी और अन्य सैनिक महत्व के उद्योग,
(२) आधारभूत एवं मूल उद्योग,
(३) अन्य उद्योग (योजना में प्राथमिकता प्राप्त उद्योग और वे उद्योग जो आधारभूत उद्योगों के सहायक अथवा आश्रित उद्योग (ancil-lary) हों।

प्रथम वर्ग के उद्योगों को संरक्षण अनिवार्य बताया गया चाहे उनके संरक्षण का कितना ही कर भार क्यों न पड़े। दूसरे वर्ग के उद्योगों को संरक्षण आवश्यक होगा,

किन्तु रक्षण देने से पूर्व प्रशुल्क अधिकारी उनके रक्षण का प्रकार और उसकी अवधि तथा तत्सम्बन्धी शर्तों पर विचार करेंगे। तृतीय वर्ग के उद्योगों को रक्षण देने से पूर्व उनके राष्ट्रीय महत्व पर विचार किया जायगा और उन्हीं उद्योगों को रक्षण दिया जायगा जिन्हें रक्षण देना देश के हित में समझा जाये और जिनमें रक्षण देने के उपरान्त अपने पैरों पर खड़े होने का बल हो। राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों से तात्पर्य उन उद्योगों से बताया गया जिनको पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत ऊँचा स्थान दिया गया हो अथवा जो आधारभूत एवं मूल उद्योगों के सहायक अथवा आश्रित (ancillary) उद्योग हों।

आयोग ने आयात करों के अतिरिक्त, आयात वस्तुओं पर परिमाण सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाने और रक्षित उद्योगों को आर्थिक सहायता देने का भी सुझाव दिया। उन्होंने एक विकास निधि बनाने और रक्षित उद्योगों की देख-रेख के लिए एक स्थायी प्रशुल्क आयोग (Tariff Commission) नियुक्त करने को भी कहा।

Q. 6. Give a critical account of India's Tariff Policy since 1921. **(Agra, 1957)**

१९२१ से भारत की तटकर नीति के विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिये।

प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त विश्व में आर्थिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। सभी देशों ने विदेशी प्रतियोगिता का बचाव करने के लिये देशी उद्योगों को रक्षण देने की नीति अपनाई। भारत भी इस प्रवृत्ति से अछूता न बचा। और १९२१ में एक राजकोषीय आयोग (Fiscal Commission) की नियुक्ति की। आयोग ने देशी उद्योगों को विवेधात्मक रक्षण देने का सुझाव दिया। साथ ही साथ इस सम्बन्ध में आवश्यक नियम भी बनाये। आयोग के अनुसार रक्षण उन्हीं उद्योगों को दिया जा सकता था जो निम्नांकित तीन बातों की पूर्ति कर सकते थे :

(क) उस उद्योग को रक्षण दिया जायगा जिसे कुछ विशेष प्राकृतिक साधन (कच्चा माल, सस्ती शक्ति, श्रम तथा घरेलू बाजार) प्राप्त हों जिनके कारण उसमें विदेशी प्रतियोगिता का सामना करने का बल हो। साधनहीन उद्योग को रक्षण देना देश पर सदैव के लिये आर्थिक बोझ लादना होगा।

(ख) उस उद्योग को रक्षण देना उचित है जो बिना रक्षण के उन्नति नहीं कर सकता अथवा उतनी उन्नति नहीं कर सकता जितनी देश हित में वाञ्छनीय है।

(ग) उस उद्योग को रक्षण दिया जाये जो कि कुछ समय तक रक्षण प्राप्त करने के उपरान्त अपने पैरों पर खड़ा हो सके अर्थात् विदेशी प्रतियोगिता को सहन कर सके।

को २३, कागज को १५ महीने और लोहा इस्पात उद्योग को ११ महीने प्रतीक्षा देखनी पडी।

(च) कुछ लोगो का ऐसा भी विचार है कि इस सीमित रक्षण का करदाता को उतना लाभ न हुआ जितना कि उसके ऊपर कर भार लद गया।

द्वितीय युद्ध के वर्षो मे आयात पर सरकार का पूरा नियन्त्रण रहा। अतएव औद्योगिक रक्षण की कोई आवश्यकता न थी। तो भी सरकार ने उन उद्योगो का रक्षण जारी रखा जिन्हे युद्ध से पूर्व रक्षण दिया जा चुका था। सन् १९४० मे भारत सरकार ने यह भी घोषणा कर दी कि जो नये उद्योग युद्धकाल मे स्थापित होंगे यदि उनकी स्थिति सुदृढ और सन्तोषजनक होगी तो आवश्यकता पडने पर उन्हे सरकार अवश्य रक्षण प्रदान करेगी। युद्ध समाप्त होने पर सरकार अपनी उक्त घोषणा के अनुसार रक्षण सम्बन्धी भावी नीति पर गम्भीरता से विचार करने लगी और नवम्बर १९४५ मे एक अस्थाई प्रशुल्क मण्डल की स्थापना की। यह प्रशुल्क मण्डल केवल दो वर्ष के लिये नियुक्त किया गया था। इसका उद्देश्य युद्धकालीन उद्योगो की रक्षण सम्बन्धी मांग पर विचार करना था। १९४७ मे इस प्रशुल्क मण्डल का जीवन काल ३ वर्ष के लिये और बढा दिया गया। इस मण्डल ने ३८ नये उद्योगो को रक्षण दिया और २२ उद्योगों के रक्षण की अवधि बढाने का सुझाव दिया। नये रक्षित उद्योगो मे एलूम्यूनियम, कास्टिक सोडा, सोडा ऐश, बुनाई मशीनें, बाईसिकिल, बिजली की मोटरें इत्यादि मुख्य थे। १९४८ की औद्योगिक नीति सम्बन्धी घोषणा के उपरान्त भारत सरकार के लिये स्थाई प्रशुल्क नीति-निर्माण भी आवश्यक हो गया। अतएव अप्रैल १९४९ मे दूसरे राजकोषीय आयोग की नियुक्ति की गई। आयोग ने परिवर्तित परिस्थितियो मे रक्षण सम्बन्धी नीति मे आवश्यक परिवर्तन करने के सुझाव दिये। उन्होने औद्योगिक रक्षण का नियोजित आर्थिक विकास से घनिष्ट सम्बन्ध बनाया। आयोजित क्षेत्र मे सम्मिलित उद्योगो को आयोग ने तीन वर्गों मे बांटा :

(१) देश रक्षा सम्बन्धी और अन्य सैनिक महत्व के उद्योग।
(२) आधारभूत एव मूल उद्योग।
(३) अन्य उद्योग।

प्रथम वर्ग के उद्योगो को रक्षण अनिवार्य बताया गया। दूसरे वर्ग के उद्योगो को रक्षण आवश्यक होगा किन्तु इससे पूर्व प्रशुल्क अधिकारी उनके रक्षण का प्रकार और रक्षण की अवधि तथा तत्सम्बन्धी शर्तो पर विचार करेंगे। तृतीय वर्ग के उद्योगो को रक्षण देने से पूर्व उनके राष्ट्रीय महत्व पर विचार किया जायगा और उन्ही उद्योगो को रक्षण दिया जायगा जिन्हे रक्षण देना देश के हित मे समझा जाय और जिनमे रक्षण देने के उपरान्त अपने पैरो पर खडे होने का बल हो। राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों से तात्पर्य उन उद्योगो से बताया गया जिनकी योजना के अन्तर्गत ऊंचा

स्थान दिया गया हो अथवा जो आधारभूत और मूल उद्योगों के सहायक अथवा उप-उद्योग (ancillary) हों।

राजकोषीय आयोग ने आयात करों के अतिरिक्त, आयात वस्तुओं पर मात्रा सम्बन्धी रुकावटें लगाने और रक्षित उद्योगों को आर्थिक सहायता देने का भी सुझाव दिया। उन्होंने एक विकास निधि बनाने और रक्षित उद्योगों की देख-रेख के लिए स्थायी प्रशुल्क आयोग (Tariff Commission) स्थापित करने को भी कहा।

राजकोषीय आयोग के सुझावों के अनुसार भारत सरकार ने सितम्बर १९५१ में प्रशुल्क आयोग कानून बनाया। इस कानून के अन्तर्गत जनवरी १९५१ में एक स्थायी प्रशुल्क आयोग की स्थापना की गई। आयोग के तीन सदस्य हैं जिनमें से एक सभापति है। इनका मुख्यालय बम्बई में है। रक्षण के निमित्त प्रशुल्क मण्डल जिन उद्योगों पर विचार कर रहा था, उनको आयोग ने ले लिया तथा नए रक्षण सम्बन्धी प्रस्ताव भी आमन्त्रित किए। आयोग के बनने के समय रक्षण जारी रखने के निमित्त ४२ उद्योग प्रशुल्क मण्डल के विचाराधीन थे। इन सभी उद्योगों के लिए आयोग ने रक्षण जारी रखने का सुझाव दिया। तब से प्रशुल्क आयोग प्रति वर्ष नए उद्योगों को आवश्यकतानुसार रक्षण देता है; पूर्व रक्षित उद्योगों के रक्षण की अवधि बढ़ाता है; आवश्यकता न होने पर रक्षण बन्द करने को कहता है तथा रक्षित उद्योगों की निरन्तर देख-भाल करता रहता है।

इस भांति भारत सरकार की प्रशुल्क नीति ने अब एक स्थायी स्वरूप ग्रहण कर लिया है। रक्षण को अब आयोजित अर्थ व्यवस्था का एक आवश्यक अङ्ग मान लिया गया है।

वर्तमान प्रशुल्क आयोग के अधिकार और कर्तव्य दोनों ही अधिक विस्तृत और व्यापक हैं। अब रक्षण देने के लिए वैसी कड़ी शर्तें नहीं रहीं जैसे पहले थीं। देश-रक्षा सम्बन्धी एवं आधारभूत उद्योगों को बिना किसी शर्त के रक्षण दिया जाता है। अन्य उद्योगों के सम्बन्ध में उनका राष्ट्रीय महत्व देखा जाता है। कच्चे माल, देशी बाजार इत्यादि शर्तों की पूर्ति आवश्यक नहीं है। यदि किसी उद्योग को आन्तरिक बाजार अथवा श्रम सहज सुलभ हैं किन्तु स्थानीय कच्चे माल का उसके पास अभाव है तो उसे रक्षण दिया जा सकता है। कच्चा माल वह विदेश से आयात कर सकता है। पहले देशी बाजार आवश्यक शर्त मानी जाती थी, अब निर्यात बाजार के कारण भी रक्षण मिल सकता है। पहले केवल पूर्व स्थापित उद्योगों को ही रक्षण दिया जाता था। अब ऐसे उद्योगों को भी रक्षण दिया जा सकता है जो स्थापित होने जा रहे हैं और जिन्होंने अभी उत्पादन प्रारम्भ नहीं किया। रक्षण की अवधि के सम्बन्ध में अब प्रशुल्क आयोग को पूर्ण अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक उद्योग की आवश्यकता और स्थिति का ध्यान रखकर प्रशुल्क आयोग अवधि निश्चित करने में स्वतन्त्र है।

Q. 7. "Free trade has become a thing of the past and protection has taken its place." Why ? Explain fully, discussing merits and demerits of the two. *(Agra, B. Com. I, 1959)*

"स्वतन्त्र व्यापार अब प्राचीन काल की वस्तु समझी जाने लगी है और रक्षण ने उसका स्थान ले लिया है।" क्यों ? दोनों के लाभ-हानि बतलाते हुए पूर्णतः समझाइए।

प्रथम विश्व युद्ध ने विश्व के देशों को यह पूर्णतः जता दिया कि वही देश समृद्ध और शक्तिशाली समझा जा सकता है जिसने अपनी औद्योगिक उन्नति कर ली हो और ऐसा देश ही युद्ध में विजयी हो सकता है। आज के युग में वह देश युद्ध में कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता जो औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। युद्धकाल में अर्थ व्यवस्था एक कृत्रिम रूप धारण कर लेती है। सभी देशों ने विदेशी व्यापार पर भारी प्रतिबन्ध और कर लगा दिए। युद्धोत्तर काल में यह प्रवृत्ति और भी अधिक बलवती होती गई अर्थात आर्थिक राष्ट्रीयता के युग का आविर्भाव हुआ। एक देश की देखा-देखी दूसरे ने और दूसरे की देखा देखी तीसरे ने अपने व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने प्रारम्भ किए अर्थात अपने उद्योगों को रक्षण देना श्रेयस्कर समझा। इस भांति १६ वीं शताब्दी की स्वतन्त्र व्यापार की नीति सभी देशों ने त्याग दी और विश्व भर में रक्षण का बोलबाला हो गया। तब से इस आर्थिक राष्ट्रीयता का चलन बढ़ता ही गया और द्वितीय युद्ध ने इस प्रवृत्ति को और भी बल दिया। अब ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतन्त्र व्यापार का युग कभी नहीं आ सकता। अविकसित और अर्द्धविकसित देश भी अपनी-अपनी औद्योगिक उन्नति के लिए लालायित हैं और उनकी औद्योगिक उन्नति का एक मात्र मार्ग औद्योगिक रक्षण ही है। जमे हुए विदेशी उद्योगों की प्रतियोगिता में बिना रक्षण के उन देशों में उद्योग नहीं पनप सकते।

स्वतन्त्र व्यापार के लाभ—

स्वतन्त्र व्यापार का अभिप्राय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की पूर्ण स्वतन्त्रता से है। ऐसे व्यापार में विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान में किसी प्रकार की रुकावट नहीं लगाई जाती और न स्वदेशी तथा विदेशी वस्तुओं में किसी प्रकार का भेद-भाव ही माना जाता है। प्रतियोगिता को पूर्ण अवसर दिया जाता है।

(१) साधनों का उपयोग—

स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति में विश्व भर में उत्पादन के साधनों का समान वितरण होता है। अतएव उनका पूर्ण उपयोग सम्भव है।

(२) विशेषीकरण—

स्वतन्त्र प्रतियोगिता के कारण प्रत्येक देश उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन में अपनी सारी शक्ति लगाता है जिनके लिए उसे उपयुक्त साधन प्राप्त हैं अर्थात विशेषीकरण की क्रिया को पूर्ण बल मिलता है।

(३) उच्च औद्योगिक स्तर—

पूर्ण प्रतियोगिता के कारण केवल उच्च कोटि का एवं सस्ता माल बनाने वाले व्यवसाय ही पनपते हैं; अकुशल व्यवसाय समाप्त हो जाते हैं। इनसे सुदृढ़ औद्योगिक व्यवस्था का जन्म होता है और उपभोक्ता को उच्च कोटि का सस्ता माल मिलता रहता है।

(४) पारस्परिक सम्पर्क—

विभिन्न देशों को स्वतन्त्रतापूर्वक एक दूसरे के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है जिनसे सद्भावना और सहानुभूति उत्पन्न होती है।

स्वतन्त्र व्यापार-व्यवस्था में केवल सबल और सम्पन्न राष्ट्र ही उन्नति कर सकते हैं; निर्बल और साधनहीन देशों को विकास करने का कभी अवसर नहीं मिल सकता। ऐसी स्थिति में अविकसित राष्ट्र सदैव अविकसित रहे आयेंगे और वहाँ गरीबी और निम्न जीवन-स्तर सदैव बने रहेंगे। अतएव इस व्यापार-व्यवस्था को आज के युग में स्थान नहीं। अब यह प्राचीन काल की घटना समझी जाने लगी है।

संरक्षण के लाभ—

(१) शिशु उद्योग—शिशु उद्योग से तात्पर्य नए उद्योग से है जो बिना सहारा पाए अपने पैरों पर खड़े होने में असमर्थ हो। अविकसित देशों में तभी उद्योग पनप सकते हैं जब उन्हें विदेशी उद्योगों की प्रतियोगिता से रक्षण दिया जाए। विदेशी सबल उद्योगों के सामने नए एवं निर्बल उद्योग कदापि नहीं पनप सकते।

(२) साधनों का उपयोग—रक्षण शिशु उद्योगों को ही बढ़ने का अवसर नहीं देता वरन् अनेक नए उद्योगों को खड़ा करके उस देश के प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग करने के अवसर प्रदान करता है।

(३) कार्य वृद्धि—रक्षण से आयात में कमी होकर वर्तमान उद्योगों की उत्पादन क्षमता बढ़ती है और नए-नए उद्योग और देश में खुलने लगते हैं। इस औद्योगिक विस्तार के कारण काम के साधन बढ़ते हैं और लोगों को काम मिलने में सुविधा होती है।

(४) विविध उद्योगों की उन्नति—रक्षण द्वारा देश के साधनों का पूर्ण उपयोग होता है, नए-पुराने सभी उद्योग बढ़ने लगते हैं। इस भाँति देश की अर्थ-व्यवस्था सर्वाङ्गपूर्ण होती है। हर प्रकार के उद्योग वहाँ उठ खड़े होते हैं।

(५) आधारभूत उद्योग—प्रत्येक देश को अपने आधारभूत एवं मूल उद्योगों को रक्षण प्रदान करना परम आवश्यक है। ऐसे उद्योगों की उन्नति से देश की अर्थ-व्यवस्था सुदृढ़ होती है।

(६) देश रक्षा—देश-रक्षा से सम्बन्धित उद्योगों को रक्षण देना आवश्यक अनिवार्य माना जाता है।